ॐ

भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादकः—स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती

मार्गशीर्ष सम्वत् १९८४

वार्षिक चन्दा २)

एक प्रतिका ।)

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और उस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और प्रेम का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्र के संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नाम से और विज्ञापन व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास किस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

नं०	विषय	पृष्ठ
१.	मंगलाचरण	७३
२.	दिव्य सन्देश [ले० श्री० हनुमान प्रसादजी]	७६
३.	भक्ति समर्पण [ले० श्रीमती सुमित्रादेवी श्रीभगवद्भक्ति आश्रम]	८०
४.	ब्रह्मचर्य [ले० श्रीमती सूरज देवी श्रीभगवद्भक्ति आश्रम]	८१
५.	मनुष्य को क्या करना चाहिये [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी]	८६
६.	मनोवृत्तियों की मादकता [ले० पं० ज्ञानचन्द्र शास्त्री रजनल]	८८
७.	मैत्रायणी उपनिषद्	६१
८.	धर्म [ले० म० रूपरामजी बनस्थी]	६४
९.	नारद भक्ति सूत्र	६७
१०.	भजन।	१०४

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः" ।

वार्षिक चन्दा २)

भक्ति

एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका ।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, मार्गशिर पूर्णिमा सं० १९८५ । { अङ्क ३

॥ मंगलाचरणम् ॥

उमारुद्रात्मिकाः सर्वाः प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ।
व्यक्तं सर्वमुमारूपमव्यक्तं तु महेश्वरम् ॥ १ ॥

स्थावर जङ्गम रूप सकल जगत् उमा शंकर का ही रूप है । व्यक्त उमा का रूप है और अव्यक्त महेश्वर का ॥ १ ॥

अन्तरात्मा भवेद्ब्रह्मा परमात्मा महेश्वरः ।
सर्वेषामेव भूतानां विष्णुरात्मा सनातनः ॥ २ ॥

अन्तरात्मा ब्रह्मा हुवा, परमात्मा महेश्वर है और सनातन विष्णु सब भूतों का आत्मा है ॥२॥

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः ।
प्रयोजनार्थं रुद्रेण मूर्तिरेका त्रिधा कृता ॥ ३ ॥

कार्य विष्णु है, क्रिया ब्रह्मा है और कारण महेश्वर है। प्रयोजनार्थ एक रुद्र ने तीन मूर्ति धारण की है ॥ ३ ॥

धर्मो रुद्रो जगत्विष्णुः सर्वज्ञानं पितामहः ।
श्रीरुद्र रुद्र रुद्रेति यस्तं ब्रूयाद्विचक्षणः ॥ ४ ॥

धर्म रुद्र है, जगत् विष्णु है और सकल ज्ञान ब्रह्मा है। जो विचक्षण मनुष्य रुद्र रुद्र ऐसा कहता है-॥ ४ ॥

कीर्तनात्सर्व देवस्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
रुद्रो नर उमा नारी तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ ५ ॥

वह देवों के देव रुद्र के कीर्त्तन से सारे पापों से छूट जाता है। रुद्र नर है और उमा नारी है उनके लिये नमस्कार हो ॥ ५ ॥

रुद्रो ब्रह्मा उमा वाणी तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो विष्णु रुमा लक्ष्मी स्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ ६ ॥

ब्रह्मा रूप रुद्र के लिये, वाणी रूप उमा के लिये नमस्कार हो। विष्णु रूप रुद्र के लिये और लक्ष्मी रूप उमा के लिये नमस्कार हो ॥ ६ ॥

रुद्रः सूर्य उमा छाया तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रः सोम उमा तारा तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ ७ ॥

सूर्य रूप रुद्र के लिये और छाय रूप उमा के लिये नमस्कार हो। चन्द्र रूप रुद्र के लिये और तारा रूप उमा के लिये नमस्कार हो ॥ ७ ॥

रुद्रो दिवा उमा रात्रिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो यज्ञ उमा वेदिस्तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ ८ ॥

दिवस रूप रुद्र के लिये और रात्रि रूप उमा के लिये नमस्कार हो । यज्ञ रूप रुद्र के लिये और वेदी रूप उमा के लिये नमस्कार हो ॥ ८ ॥

रुद्रो वह्निरुमा स्वहा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो वेद उमा शास्त्रं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ ९ ॥

अग्नि रूप रुद्र के लिये स्वाहा रूप उमा के लिये नमस्कार हो। वेद रूप रुद्र के लिये और शास्त्र रूप उमा के लिये नमस्कार हो ॥ ९ ॥

रुद्रो वृक्ष उमा वल्ली तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो गन्ध उमा पुष्पं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ १० ॥

वृक्ष रूप रुद्र के लिये और वल्ली रूप उमा के लिये नमस्कार हो। गन्ध रूप रुद्र के लिये और पुष्प रूप उमा के लिये नमस्कार हो ॥ १० ॥

रुद्रोऽर्थ अक्षरः सोमा तस्मै तस्यै नमो नमः ।
रुद्रो लिङ्गमुमा पीठं तस्मै तस्यै नमो नमः ॥ ११ ॥

अर्थ रूप रुद्र के लिये और अक्षर रूप उमा के लिये नमस्कार हो। लिङ्ग रूप रुद्र के लिये और पीठ रूप उमा के लिये नमस्कार हो ॥ ११ ॥

दिव्य सन्देश ।

सार्वभौम धर्म के पालन से सब का कल्याण।

(ले० श्री हनुमान प्रसादजी सं० "कल्याण")

इस समय मनुष्य जातिकी बुरी दशा हो रही है। पार्थिव प्रलोभनों की अधिकता से अभाव और अशान्तिकी आग धधक उठी है, इसी जड़ भोग-विलास की प्रबलतासे धार्मिक जगत्में भी अन्दर ही अन्दर बड़ा अनर्थ होने लगा है। धर्मके नाम पर आज जगत्में जिस दानवी लीलाका ताण्डवनृत्य हो रहा है उसे देख कर कलेजा कांप उठता है, परमात्मा पर विश्वास रख कर संसारमें लोकहितार्थ अपना कर्तव्य कर्म करने वालों की संख्या कम हो रही है। परस्पर एक दूसरे का सर्वस्वान्त करनेके लिये जातियां और राष्ट्र अपना अपना दृढ़ संगठन कर रहे हैं तथा वे अपने सुसंगठित साधनों द्वारा दूसरोंकी स्वाभाविक उन्नति के मार्गमें रोड़े अटकाकर उन्हें गिराने और पददलित करनेकी घृणित चेष्टा कर रहे हैं। दम्भ पूर्ण आसुरी सम्पत्ति का विकास हो चला है। विषयासक्ति और कामनाने मनुष्यके ज्ञानको ढक कर उसे अपने मनुष्यत्वके पदसे गिरानेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया है। [illegible] बाह्य सुन्दरताने दम्भ, व्यभिचार, मिथ्या अभिमान और हिंसा प्रतिहिंसा आदि दुर्गुण उत्पन्न और क्रमशः उन्नत होकर जगत्की मनुष्य जातिको आध्यात्मिक आत्म हत्या करने के लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं। सर्वव्यापी, सर्वप्रिय, सर्वमय, और सर्वत्र परमात्मा का आज । [illegible] संकुचित सीमाके अन्दर रखनेकी व्यर्थ चेष्टा करके, एक धर्मनाम धारी दूसरे प्रतिपक्षी धर्मनाम-धारी के उस धर्मके नामका नाश कर अपने धर्मके नामकी निरर्थक उन्नति करना चाहता है।

धर्मके नामपर आज ढोंग और दम्भका पार नहीं रहा है। परमात्माको, उसके नामको और उसके दिव्य धर्म को भुलाकर जगत् आज ऊपर की बातोंमें ही लड़ रहा है। इसीलिये न तो आज धर्मकी उन्नति होती है और न कोई सुखका साधन ही दीखता है। लोग समझते हैं कि ईश्वर केवल उनके निर्देश किये हुए स्थान और नियमोंमें ही आबद्ध है, अन्य सब जगह तो उसका अभाव ही है ?

ऐसी स्थितिमें मनुष्य-जातिके कल्याणके लिये ऐसी कुछ बातें होनी चाहियें जिन पर अमल करने से सबका कल्याण हो सकता है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये निम्नलिखित सात बातें "दिव्य सन्देश" के रूपमें आपलोगोंके सम्मुख रक्खी जाती हैं। इनका पालन ईश्वरवादी मात्र कर सकते हैं और यह जोरके साथ कहा जासकता है कि इनका पालन करनेसे उनका परम कल्याण होनेमें कोई सन्देह नहीं है।

सात बातें।

१-ईश्वरके नामका जप, स्मरण और कीर्तन करना चाहिये।

२-ईश्वरके नामका सहारा लेकर पाप नहीं करना चाहिये जो लोग ईश्वरके नामकी ओटमें पाप करते हैं वे बड़ा अपराध करते हैं।

३ (क) ईश्वरके नामका साधनकर उसके बदले में संसारके भोगों की कामना नहीं करनी चाहिये।

(ख) ईश्वरके नाम साधनरूपी धनका उपयोग पापनाशके कार्यमें भी नहीं करना चाहिये।

४-ईश्वरके नामको परमप्रिय मानकर उसका उपयोग उसीके लिये करना चाहिये।

५-दम्भ नहीं करना चाहिये। दम्भसे भगवान् अप्रसन्न होते हैं। दाम्भिककी बुरी गति होती है।

६-सच्चे ईश्वरभक्त, सदाचारपरायण कर्तव्यशील होनेके लिये गीताधर्मका आश्रय लेना चाहिये।

७-दूसरेके धर्मकी निन्दा या तिरस्कार नहीं करना चाहिये। ऐसे झगड़ोंसे सच्चे सुखके साधकको बड़ा नुकसान होता है।

अब इन सातों बातोंका अलग अलग विवेचन कीजिये:-

(१) जगत्के ईश्वरवादी मात्र ईश्वरके नामको मानते हैं। भगवान्के नामसे उसके स्वरूपकी, गुणोंकी, महिमाकी, दयाकी और प्रेमकी स्मृति होती है। जैसे सूर्यके उदय मात्र से जगत् के सारे अन्धकार का नाश हो जाता है वैसेही भगवन्नामके स्मरण और कीर्तन मात्रसे ही समस्त दुर्गुण और पापोंका समूह तत्काल नष्ट हो जाता है। जिनके यहां परमात्मा जिस नामसे पुकारा जाता है वह उसी नामको ग्रहण करें, इसमें कोई आपत्ति नहीं।

(२) परन्तु परमात्माका नाम लेनेमें लोग कई जगह बड़ी भूल कर बैठते हैं। भोगासक्ति और अज्ञानसे उनकी ऐसी समझ हो जाती है कि हम भगवन्नामका साधन करते ही हैं और नामसे पाप नाश होता ही है, इसलिये पाप करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यों समझकर वे पापों का छोड़ना तो दूर रहा, भगवान्के नामकी ओट या उसका सहारा लेकर पाप करने लगते हैं। एक मुकदमेबाज एक नाम प्रेमी भक्तको गवाह बनाकर अदालतमें ले गया। उससे कहा कि देखो मैं जो कुछ तुमसे कहूं, हाकिमके पूछनेपर वही बात कह देना। गवाहने समझा कि यह मुझसे सच्ची ही बात कहनेको कहेगा, पर उसकी बात सुनने पर पता लगा कि वह झूठ कहलाना चाहता है। इससे उसने कहा कि भाई, मैं झूठी गवाही नहीं दूंगा मुकदमेबाज ने कहा कि "इसमें आपत्ति ही कौनसी है? क्या तुम नहीं जानते कि भगवान्के नामसे पापों का नाश होता है। तुम तो नित्य भगवान्का नाम लेते ही हो, भक्त हो जरासी झूठ से क्या बिगड़ेगा? एक ईश्वरके नाममें पापनाशकी जितनी शक्ति है उतनी मनुष्यमें पाप करनेकी नहीं है। मैं तो काम पड़नेपर योंही कर लिया करता हूं।" उसने कहा "भाई, मुझसे यह काम नहीं होगा, तुम करते हो तो तुम्हारी मर्जी।" मतलब यह कि इसप्रकार परमात्माके नाम या उसकी प्रार्थनाके भरोसे जो लोग पापका आश्रय देते हैं वे बड़ा अपराध करते हैं। वे तो पाप करने में भगवान्के नामको साधन बनाते हैं, नाम देकर बदलेमें पाप खरीदना चाहते हैं। ऐसे लोगोंकी दुर्गति नहीं होगी तो और किस की होगी?

(३) (क) कुछ लोग जो संसारके पदार्थों की कामनावाले हैं वे भी बड़ी भूल करते हैं। वे भगवान्का नाम लेकर उसके बदलेमें भगवान्से धन-सम्पत्ति, पुत्र-परिवार, मान-बड़ाई आदि

चाहते हैं। वास्तवमें वे भी भगवन्नामका महात्म्य नहीं जानते। जिस भगवन्नामके प्रतापसे उस राजराजेश्वरके अखण्ड राज्यका एकाधिपत्य मिलता हो उसी नाम को क्षणभङ्गुर और अनित्य तुच्छ भोगों की प्राप्तिके कार्यमें खोदेना मूर्खता नहीं तो क्या है? संसारके भोग आने और जानेवाले हैं, सदा ठहरते नहीं। प्रत्येक भोग दुःखमिश्रित है। ऐसे भोगोंके आने जानेमें वास्तवमें हानि ही क्या है?

(ग) जो लोग यह समझकर नाम लेते हैं कि इनके लेनेसे हमारे पाप नाश होजायंगे वे भी विशेष बुद्धिमान् नहीं हैं क्योंकि पापोंका नाश तो पापोंके फलभोगसे भी हो सकता है। जिस ईश्वर के नामसे वह प्रियतम परमात्मा प्रसन्न होता है, जो नाम प्रियतमकी प्रीतिका निदर्शन है, उसे पाप नाश करनेमें लगाना क्या भूल नहीं है? वास्तव में ऐसा करनेवाले भगवन्नामका पूरा माहात्म्य नहीं जानते। क्या सूर्यको कहना पड़ता है कि तुम अंधेरेका नाश कर दो। उसके उदय होनेपर तो अन्धकारके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता।

(४) भगवान्का नाम भगवत् प्रेमके लिए ही लेना चाहिये, भगवान् मिलें या न मिलें परन्तु उनके नामकी विस्मृति न हो। प्रेमी अपने प्रेम के मिलनेसे इतना प्रसन्न नहीं होता जितना उसकी नित्यस्मृतिसे होता है। यदि उसके मिल जानेपर कहीं उसकी स्मृति छूट जाती हो तो वह यही चाहेगा कि ईश्वर भलेही न मिलें परन्तु उसकी स्मृति उत्तरोत्तर बढ़े, उसका नाश न हो। यही विशुद्ध प्रेम है।

(५) नाम साधनमें कहीं कृत्रिमता न आजाय। वास्तवमें आज कल जगत्में दिखावटी धर्म-'दंभ' बहुत बढ़ गया है। बड़े बड़े धर्मके उपदेशक न मालूम किस सांसारिक स्वार्थको लेकर कौनसी बात कहते हैं, इस बातका पता लगाना कठिन हो जाता है। इस दम्भके दोषसे सबको बचना चाहिये। दम्भ कहते हैं बगुलाभक्ति को। अन्दर जो बात न हो और ऊपरसे मान बड़ाई प्राप्त करने या किसी कार्यविशेषकी सिद्धिके लिये दिखलायी जाय, वही दम्भ है। दंभी मनुष्य भगवान्को धोखा देनेका व्यर्थ प्रयत्न कर स्वयं बड़ा धोखा खाता है। भगवान् तो सर्वदर्शी होने से धोखा खाते नहीं। वह धूर्त जो जगत्को भुलावे में डाल कर अपना मतलब सिद्ध करना चाहता है स्वयं गिर जाता है। पाप उसके चिर संगी बन जाते हैं। पापों से उसको घृणा निकल जाती है। ऐसे मनुष्यको धर्मका परमतत्त्व जिसे परमात्मा का मिलन कहते हैं, कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव इस भयङ्कर दोषसे सर्वथा बचना चाहिये।

(६) इन सब बातोंको जानकर ईश्वरका तत्त्व समझने और तदनुसार जगत् में करने के लिये राह बतलानेवाला कोई सार्वभौम ग्रन्थ चाहिये या ऐसा कोई उपादेय सिद्ध मार्ग चाहिये जिसपर आरूढ़ होते ही ठीक ठिकानेसे अपने लक्ष्य तक पहुंचा जासके। हिन्दुओंकी दृष्टिसे ऐसे चार ग्रन्थों के नाम बतलाये जा सकते हैं जो कल्याणके मार्ग दर्शकका बड़ा अच्छा काम देसकते हैं। (१) उपनिषद् (२) श्रीमद्भगवद्गीता (३) भागवत और (४) तुलसीदासजीका रामचरितमानस। (उपनिषदोंमें प्रधानतः ईश, केन आदि दश उपनिषदोंको समझना चाहिये।) ये ऐसे ग्रन्थ हैं कि जो मनुष्यमात्रको असली लक्ष्य तक पहुंचा

सकते हैं। उपनिषदोंकी और गीता की प्रशंसा आज जगत् कर रहा है पाश्चात्य जगत् के भी बड़े बड़े तत्वज्ञ विद्वानोंने उपनिषद् और गीता धर्मको सार्वभौम धर्म माना है। यदि इन चारोंका अध्ययन न होसके तो इन चारोंमें एक छोटासा किन्तु बड़ा ही उपादेय ग्रन्थ गीता है जिसे हम सबके कामकी चीज़ कह सकते हैं; उसीका अध्ययन करना चाहिये। गीताका अनुवाद अनेक भाषाओंमें हो चुका है। यह सार्वभौम ग्रन्थ है। जिसको किसी ग्रन्थविशेषका अध्ययन न करना हो वह गीता-धर्मको ही अपना मार्ग दर्शक बना सकता है। गीताधर्मका अर्थ संक्षेपमें इन शब्दोंमें किया जा सकता है–

(क) सब कुछ भगवान्‌का समझकर सिद्धि-असिद्धि में समभाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका त्याग कर भगवत् आज्ञानुसार केवल भगवान्‌के लिये ही समस्त कर्मोंका आचरण करना तथा श्रद्धाभक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरसे सब प्रकार भगवान्‌के शरण होकर; उसके नाम, गुण और प्रभावयुक्त स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना। अथवा–

(ख) सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी तरह अथवा स्वप्नके संसारकी तरह मायामय होनेके कारण मायाके कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं। ऐसे समझकर मन, इन्द्रिय और शरीर-द्वारा होने वाले समस्त कर्मोंमें कर्तृत्वाभिमान से रहित होकर, सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहना, जिसमें एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसीके भी अस्तित्वका भाव न रह जाय।

यही गीताका निष्कामकर्मयोग और सांख्य योग है, यही सार्वभौम धर्म है। इसके पालनमें सभी वर्ण और सभी जातियोंका समान अधिकार है। इसलिये–

(ग) किसी दूसरेके धर्मपर किसी प्रकार का आक्षेप न कर ईर्षा, वैमनस्य और प्रतिहिंसा आदि कुभावोंको परित्याग कर संसारमें सबको सुख पहुंचाते हुए विचरना चाहिये। जो लोग अपने धर्मको पूर्ण बताकर दूसरेके धर्मकी अपूर्णता सिद्ध करते हैं वे वास्तवमें परमात्माके तत्वको नहीं जानते। यदि मैं एक धर्मका विरोध करता हूं, उस धर्म को भला बुरा कहता हूं तो दूसरे के द्वारा मुझे अपने धर्म के लिये भी वैसे ही अपशब्द सुनने पड़ते हैं। इससे मैं उसके साथ ही अपने धर्म का भी अपमान करता हूं। क्योंकि ऐसा करनेमें मुझे अपने ईश्वरको और धर्मको सर्वव्यापी और सार्वभौम पदकी सीमासे संकुचित करना पड़ता है। किसी न किसी अंशमें सभी धर्मोंमें परमात्माका भाव विद्यमान है, अतएव किसी भी धर्मका तिरस्कार या अपमान करना अपने ही परमात्माका अपमान करना है।

अतएव जो मनुष्य धर्मके नाम पर कलह और अशान्तिमूलक परस्परके कटु-विवादोंमें न पड़कर गीताधर्मके अनुसार आचरण करता हुआ दम्भरहित होकर ईश्वरका पवित्र नाम लेता है और उस नामसे पाप करने, भोग प्राप्त करने, एवं पाप नाश होनेकी भी कामना नहीं करता, वह बहुत ही शीघ्र काम, क्रोध, असत्य, व्यभिचार और कपट आदि सब दुर्गुणोंसे छूटकर अहिंसा,

सत्य आदि सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न हो जाता है, सांसारिक जड़ भोगोंसे उसका मन हटकर सर्वदा ईश्वरके चिन्तनमें लगजाता है और इससे वह अपनी भावनाके अनुसार परमात्माके परमतत्त्वका और उसके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान और प्रत्यक्ष दर्शन लाभकर कृतार्थ हो जाता है। परमात्माका नाम ऐसा विलक्षण है कि उसके स्मरण, उच्चारण और श्रवणमात्र से ही पापोंका नाश होता है। जो लोग स्वयं परमात्माका नाम-जप करते हैं, दूसरोंको सुनाते हैं, कहीं पर बैठकर परमात्माके नामका गान करते हैं वे अपने कल्याणके साथ ही साथ संसारके अनेक जीवोंका बड़ा उपकार करते हैं। इसलिये सबको परमात्माके शुभ नामकी शरण लेकर स्वयं उसका स्मरण, जप और कीर्तन करना चाहिये और दूसरे लोगोंको प्रेमपूर्वक इस महान् कार्यमें लगाना चाहिये।

भक्ति-समर्पण

[ले० श्रीमती सुमित्रा देवी भगवद्भक्ति आश्रम]

जगन्नियन्ता के चरणों में, भक्ति अर्पित करती हूं।
तृषित लोचन से देख २ कर, हृदय में हर्षाती हूं ॥ १ ॥
विश्वकर्ता! हे दीनदयालु!! भक्ति पुष्प स्वीकार करो।
कृपा दृष्टि कर दीन बाल पर, मन मन्दिर में वास करो ॥२॥
यद्यपि कठिन ईश के दर्शन, किन्तु तेरे कारण ही।
अपनी अंक बिठा लेते हैं, ईश दया कर निश्चय ही ॥ ३ ॥
ऐसे नाम रूप रखा कर, जगन्नियन्ता कहलाते हैं।
उन के दर्शन दुर्लभता से, योगी जन ही पाते हैं ॥ ४ ॥
बाला तेरे पद पंकज पर, हुई आज से है बलिहार।
करके कृपा आज तुम उस पर देदो भक्ति प्रेम उपहार ॥ ५ ॥

ब्रह्मचर्य

(ले० श्रीमती सूरज देवी भगवद्भक्ति आश्रम)

एक समय था जब कि इस देश के प्रत्येक बालक तथा बालिकाओं के लिये ब्रह्मचर्य व्रत मुख्य तथा अनिवार्य था। और प्रत्येक जन ब्रह्मचर्य की मुख्यता से भली भांति परिचित थे। यही कारण था कि, प्राचीन जन दृढ़ता तथा नियमितता से ब्रह्मचर्य का पालन कर सुयश के भागी बनते थे। ब्रह्मचर्य का ही प्रताप था कि किसी समय में यहां के मनुष्यों की वीरता, शूरता, धैर्यता, तेजस्विता, से जगत् गर्वायमान था। जिनके विशाल ललाटों पर सूर्य सदृश कान्ति प्रदीप्त रहती थी, जिनके शुभ मनोरथ, सुश्रेष्ठ आकांक्षायें सर्वदा फलवती होती थी, जिनके मुख से निकले हुये वचन श्री रामचन्द्र जी के अमोघ बाण की नाईं अव्यर्थ थे तथा मिथ्या नहीं होते थे, जिनके यश की कीर्त्ति सदा पताका की न्याईं फहराती थी। उसी जगत् में उसी वीर जननी भूमि पर उनकी ही सन्तति निर्वीर्य, सम्पत्ति हीन, सामर्थ्य रहित, सत्वहीन तथा दुर्बल है। जिनके मनोरथ और आशय ऊषर भूमि में बीज बोने की भांति प्रायः निष्फल जाते हैं, इतना आकाश पाताल का अन्तर, इतना भीषण पतन! इस हीन अवस्था का कारण केवल एक ब्रह्मचर्य का अभाव ही है। स्वयं भगवान कैलाशपती ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हैं।

न तपस्तप इत्याहु ब्रह्मचर्य तपोत्तमम्।
ऊर्ध्वरेता भवेद्यस्तु स देवो न तु मानुषः॥

ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना ही श्रेष्ठ तप है। इससे बढ़ कर तपश्चर्या तीनों लोकों में दूसरी नहीं हो सकी। ऊर्ध्व रेता ब्रह्मचारी इस लोक में मनुष्य रूप में देवता है। अहा! कैसा ही महान् इस ब्रह्मचर्य की महिमा है। परन्तु आज हम इस ब्रह्मचर्य की महामहिमा को त्याग अधः पतन रूपी धूलि में लोट रहे हैं। कहां हमारे वीर्यवान् सामर्थ्य-सम्पन्न पूर्वज कहां हम उनकी ओज रहित निर्बल सन्तान! हे ईश्वर! कृपा करो पूर्व सदृश बुद्धि तथा ब्रह्मचर्य व्रत का यत्न देकर पुनः देश में जाग्रति करो। वृद्धयुवा शिशु ब्रह्मचर्यकी महानता से परिचित हों। और इस नीचता तथा दास्य भाव से मुक्त हों। हे भगवन्! इतना अन्तर कि जहां के शिशु अपनी शैशवावस्था में अपने मनो विनोद के लिये सिंह शावकों को सहचर बनाते थे, जिनकी बाल लीला शौर्य तेज से परिपूरित होती थी, जिन में, बचपन में ही धर्म तथा नीति कूट २ कर भरी हुई होती थी उनहीं देव तुल्य प्राचीन पुरुषों के आधुनिक शिशुओं की शैशवावस्था कुत्ते, बिल्ली, कबूतरों के साथ में खेल कर व्यतीत होती है। यह दशा ब्रह्मचर्याभाव से ही हो रही है ब्रह्मचर्य का प्रताप शूरता वीरता ही में पर्याप्त नहीं है वेद में लिखा है "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्यु मुपाघ्नतः" ब्रह्मचर्य और तप से देवताओं ने मृत्यु को पराजित कर दिया अर्थात् मृत्यु को जीत अमर कहलाये।
"अमरा निर्जरा देवा" अमर कोषे।

मरणं विन्दु पातेन जीवनं विन्दु धारणात्।
तस्मादति प्रयत्नेन कुरुते विन्दु धारणम्॥

ब्रह्मचर्य को खोना ही मृत्यु है अर्थात् वीर्य नाश से ही मृत्यु है। ब्रह्मचर्य का पालन करना ही जीवन है। अतः अति प्रयत्न से वीर्य की रक्षा करनी चाहिये। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये जीना, मरना, सुख, दुःख ब्रह्मचर्य पर अवलम्बित है। प्राचीन ऋषि मुनियों ने तपस्या करते २ सुख के अन्वेषण का प्रयत्न करते हुए अपने विचार तथा अनुभव से यही सार निकाला अर्थात् निश्चय किया कि अनन्त सुख की प्राप्ति और अत्यन्त दुःख की निवृत्ति केवल एक भगवत प्राप्ति में है। मनुष्य जीवन का मुख्य तथा श्रेष्ठ कर्तव्य भी यही है और यही जीवन का लक्ष्य है। मनुष्य संसार में आकर जब तक व्यापक विभुको प्राप्त नहीं करता और अपनी सम्पूर्ण वासनाओं को ईश्वर में लय नहीं करता तब तक वह इस अगाध संसार रूपी समुद्र की लहरोंमें लपेटे थपेड़े खाता हुआ दुःखों तथा विविध तापोंसे मुक्त नहीं होता। अतएव पुरुषोंको उचित है कि अपने जीवन में उस सर्वान्तर्यामी व्यापक विभु की प्राप्ति का प्रयत्न करें। क्योंकि इस देव दुर्लभ मनुष्य शरीर में ही यह प्राप्ति होती है। भगवान्‌की अनन्त अनुकम्पा से यह मानव देह प्राप्त हुआ है। इन सब बातों का विचार करके ऋषियों ने पुरुषों के कल्याणार्थ चार आश्रम निर्माण किये जिन में कि मनुष्य अपने २ व्यवहारों में बरतता हुआ शनैः २ भगवत् प्राप्ति पर्यन्त पहुंच सकता है। इन आश्रमों में सब से प्रथम संयम, नियम, इन्द्रियदमनरूपी ब्रह्मचर्य आश्रम है। इसी आश्रम के ऊपर शेष तीनों गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यासाश्रम निर्भर हैं।

ऋषि के वैदिक तथा आधुनिक मनुष्यों में ब्रह्मचर्य मुख्य व्रत है। इस के बिना कोई यज्ञ, व्रत, दीक्षा नहीं होती। ब्रह्मचर्य व्रत के भलीभांति पालन करने पर शेष तीनों आश्रमों में सरलता तथा सौख्यता से जीवन प्रवाह चल सकता है। स्वयं महादेव जी कहते हैं:-

सिद्धे बिन्दौ महारत्ने किं न सिद्ध्यति भूतले।
यस्य प्रसादान्महामहिमा ममाप्येता दृशोभवत् ॥

जिस के प्रभाव से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मेरी ऐसी महिमा हुई है उस वीर्य धारण से जगत् में कौनसा ऐसा कार्य है जो सिद्ध नहीं हो सकता श्री भगवान ने गीता में कहा है।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति।

भगवत् प्राप्ति के चाहने वाले ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

"आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारीः प्रजापतिः प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रो भवद्वशी"।

आचार्य ब्रह्मचारी होना चाहिये। प्रजा पालक भी विशेष शोभता है जो (वशी संयमी राजा होता है वही इन्द्र कहलाता है। ब्रह्मचर्य ही सम्पूर्ण पुरुषार्थों का मूल है। ब्रह्मचर्य के ही बल से भक्त शिरोमणि हनुमानजी ने वह कार्यकर दिखलाये कि जिनकी कल्पना भी करना आज बहुत कठिन है। बड़े भारी पर्वतों का उठाना, शत योजन समुद्र का लांघना, राक्षसों का विध्वंश करना, विकटावस्थावन में सीता महारानी की सुध लाना आदि अनेक कर्म किए जोकि ब्रह्मचर्य से हीन मनुष्यों की कल्पना में भी नहीं आ सकते।

शूरवीर होते हुए भी भक्त इतने कि जिस समय १४ वर्ष के पीछे श्रीरामचन्द्र जी के राजतिलक के समय उन को अति सुन्दर बहुमूल्य रत्नों की माला मिली तो उसे तोड़ कर देखने लगे, तब किसी ने पूछा हनुमान जी यह क्या कर रहे हो तो उन्होंने कहा "राम नाम देखता हूं" उसने कहा रत्नों में राम नाम ढूंढ रहे हो क्या आप के शरीर में राम नाम लिखा है ! हनुमानजी ने कहा निस्सन्देह, और अपना राम नाम से अङ्कित सम्पूर्ण अङ्ग सब को दिखाया और कहा बिना राम नाम की देह किस काम की। धन्य २ महावीर जी। ऐसा क्यों न हो ! तुम श्री रामचन्द्र जी के भक्त तथा पायक जो हो।

ब्रह्मचर्य का ही प्रताप है कि जिस के द्वारा मनुज राग, द्वेष, दुःख ,शोक जरा आदि व्याधियों से मुक्त हो सकता है। मनुज की सम्पूर्ण अभीष्ट सिद्धियां ब्रह्मचर्य के बिना पूर्ण नहीं होतीं। जितने भी दुस्तर कठिन कार्य होते हैं वे ब्रह्मचर्य साधन बिना सुगम नहीं हो सकते। चाहे वे सांसारिक हों चाहे पारलौकिक हों यथाः-

धर्मार्थ काम मोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगाः तस्यापहर्तारं श्रेयसो जीवितस्य च ॥

आरोग्यता ही चारों पुरुषार्थों धर्म अर्थ, काम मोक्ष का सर्वोत्तम मूल है। रोग उनचारोंको नष्ट कर डालते हैं। यही नहीं किन्तु जीवन को भी अकाल होने चिन्ताका ग्रास बनादेते हैं। संसारमें मनुष्य की तीन मुख्य शक्तियां हैं जिनके प्रवाह द्वारा जीवन चलता है। और वे तीन शक्तियां शारीरिक बल, वाणी का बल, आत्मबल, ब्रह्मचर्य ही पर निर्भर हैं। जब कि मूल किसी भी वृक्ष अथवा मकान का बलहीन होता है तब वृक्ष आदि स्वादु मधुर फल नहीं ला सकते। और न अधिक दिन रह सकते हैं। इसी प्रकार मनुष्य न तो किंचित भी सुख अनुभव कर सकते हैं न मन प्रसन्न रहता है न जीवन पूरा भोगते हैं। किसी समय मनुष्यों की आयु १०० वर्ष की होती थी। यथाः-

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः"।

शुभ कर्मों को करते हुवे सौ वर्ष जीने की इच्छा करो। द्वापर युग में पितामह भीष्म जी ने यह आदर्श बन कर दिखा दिया कि मनुष्य जीवन की मुख्य शक्ति ब्रह्मचर्य है। इसके प्रताप से वे देवता कहलाते थे। उन के मस्तक पर अखण्ड ब्रह्मचर्य का तेज चमकता था। यह ब्रह्मचर्य का ही बल था कि वीर शिरोमणि भक्त अर्जुन सन्मुख होकर रणाङ्गण में विजय न पा सके। किन्तु उन के बाण रख देने पर प्रहार किया। अधिक क्या स्वयं उनके शस्त्रास्त्र कला के शिक्षक परशुराम जी भी उनके सन्मुख हार मान गये। विजय-पताका भीष्म जी को प्राप्त हुई। और भी गार्गी, सुलभा आजन्म ब्रह्मचारिणी रह चुकी हैं। जो ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर अन्त में मुक्ति को प्राप्त हुई।

यदि नियम पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाय तो पूर्व जैसा वीरता, शूरता, आश्चर्य जनक कार्य कुशलता आसकती है। जैसा कि राम-मूर्ति ने इस जमाने में अपनी छाती पर पत्थर तुड़वा कर, मोटर रोक कर, जंजीरें तोड़ कर दिखला दिया है कि तुम्हारी निर्बलता तुम्हारा

ब्रह्मचर्य मात्र है नहीं तो तुम प्रथम सदृश शूरवीर, बलधारी और तेज युक्त बन सकते हो। ब्रह्मचर्य के बिना विद्या भी नहीं ग्रहण की जासकती है यथाः-

दत्तापि विद्या गुरुणा यथेष्टं,
न ब्रह्मचर्येण विना हि तिष्ठेत्।
यथा घटे छिद्रयुते प्रपूर्णे,
पायो न तिष्ठेत् खलु बिन्दु मात्रम् ॥

यद्यपि गुरु ने भली प्रकार यथेष्ट (पर्याप्त) विद्या दी हो परन्तु वह ब्रह्मचर्य के बिना नहीं ठहरती अर्थात् फल दायिनी नहीं होती। जैसे छिद्र युक्त घड़े को कितना ही भरदो परन्तु पानी एक बून्द भी नहीं ठहरेगा इसी प्रकार विद्या भी नहीं ठहरती है। ब्रह्मचर्य के बिना मनुज का मन बुद्धि स्थिर नहीं रहते, जब मन बुद्धि स्थिर नहीं तब न तो विद्या आसकती है और नहीं कोई कार्य होसका है?

पुरुष के कर्म ज्ञान बिना सिद्ध नहीं होते। ज्ञान मन बुद्धि की स्थिरता के बिना प्राप्त नहीं होता। मन बुद्धि की स्थिरता ब्रह्मचर्य के बिना नहीं होती। कहा है जिसका वीर्य स्थिर नहीं तिसकी बुद्धि सर्वदा वायु मध्य में दीपक की भांति अस्थिर होती है, जब बुद्धि स्थिर नहीं तब ज्ञान कहां? ज्ञान के बिना आत्मबल कहां? अज्ञानावस्था में धर्माऽधर्म का निर्णय कहां? जब धर्माऽधर्म का विवेक नहीं तब सुख शान्ति कहां? जब सुख शान्ति नहीं तब कहां परोपकार का विवेक, कहां परोपकार, कहां भक्ति शक्ति? बस अन्त में जीव पूरे ब्रह्म ज्ञान के गड्ढे में गिरके आते हैं। फिर बतलाओ देश भक्ति राज भक्ति तथा अपना सुधार और हित कहां से होसका है?

समुद्र तरणे यद्वदुपायो नौः प्रकीर्तिता।
संसार तरणे तद्वत् ब्रह्मचर्य प्रकीर्तितम् ॥

समुद्र से तरने के लिये जैसे नौका उपाय कहा है उसी भांति संसार समुद्र से तरने के लिये ब्रह्मचर्य व्रत रूपी नौका कही है। ब्रह्मचर्य ही हमारी श्रेष्ठता, स्वतंत्रता और सम्पूर्ण उन्नति का बीज मंत्र है। ब्रह्मचर्य ही हमारी सम्पूर्ण सिद्धियों का एक मात्र रहस्य है। अतः निवेदन है कि प्राचीन काल की भांति अब भी ब्रह्मचर्य व्रत अनिवार्य होना चाहिये। बाल विवाह वृद्ध विवाह को दूर करना चाहिये। प्रत्येक बालक तथा बालिकाओं को विद्या के साथ२ ब्रह्मचर्य की शिक्षा अवश्य देनी चाहिये। छोटी अवस्था में जो कुछ बच्चों के निर्मल हृदय पटल पर अंकित कर दिया जाता है वही बड़ी अवस्था के आने पर दृढ़ स्तम्भ की भांति सुदृढ़ हो जाता है। माता पिताओं का कर्त्तव्य है कि अपने सुकोमल बच्चों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा प्राप्त करा आदर्श बनावें। छोटी अवस्था में जितना सादा खाना पीना पहनना तथा रहन सहन होगा उतना ही शरीर आरोग्य रहेगा।

"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"।

यह आत्मा बलहीन को प्राप्त नहीं होता। अतः आत्मा के साक्षात्कार करने में शरीर को सुदृढ़ता तथा आरोग्यता आवश्यकीय है।

सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्।
विद्यार्थी सुखं त्यजेत् सुखार्थी त्यजेद् विद्याम् ॥

अच्छे खाने पीने वाले, अच्छे वस्त्र पहनने वाले, सुख से रहने वाले को विद्या कहां ? यदि विद्यार्थी बनना चाहते हो तो सुख को तज दो, यदि सुखार्थी बनना चाहते हो तो विद्या को छोड़ दो। अब ऐसा लिखा है तो माता पिताओं को उचित है कि अपने बच्चों को सादा बनावें। आज कल के स्कूल कालेजों की शिक्षाओं से सादापन की शिक्षा नहीं मिल सकती बल्कि उन्हें वहां देखा देखी अपनी आवश्यकता बढ़ाने का अवसर प्राप्त होता है। ऐसी आदर्श शिक्षायें तो आश्रमों में ही प्राप्त हो सकती हैं, जहां कि सम्पूर्ण सादा व्यवहार होता है।

ये तपश्च तपस्यन्ति,
कौमारा ब्रह्मचारिण।
विद्यावेदव्रतस्नाता,
दुर्गाण्यपि तरन्ति ते ॥ १ ॥

जो ब्रह्मचारी कुमार ब्रह्मचर्य रूपी तप के तपस्वी हैं जिन्होंने सुशिक्षा से अपने को पवित्र बना लिया है वे ही केवल अद्भुत और कठिन से कठिन कर्मों को करके इस दुस्तर संसार सागर को तर सकते हैं। ब्रह्मचारी पुरुष सर्वत्र दिग्विजयी होते हैं उन्हें कभी अपयश नहीं मिलता।

"ब्रह्मचर्य के कुछ नियम"

सेवेतेमांस्तु नियमान् ब्रह्मचारी गुरौ वसन्।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपो विवृद्धयर्थमात्मनः ॥

ब्रह्मचारी गुरु के घर में रह कर अपने तप की वृद्धि के लिये समस्त इन्द्रियों को वश में रख इन नियमों का पालन करे।

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्या-
द्देवर्षि पितृतर्पणम्।
देवताभ्यर्चनं चैव,
समिधा दानमेव च ॥

नित्य स्नान करके, शुद्ध होकर, देव ऋषि और पितरों का तर्पण करे, देवताओं का यथा योग्य पूजन करे वन में से यज्ञ के लिये लकड़ियां लाकर हवन करे।

वर्जयेन्मधुमांसं च,
गन्ध माल्यं रसाः स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि,
प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥

शहद, मांस, चन्दन, इत्यादि पदार्थ फूल-मालायें, रस, स्त्रियां और सर्व प्रकार के आसवों का तथा प्राणियों की हिंसा का सर्वथा त्याग करे।

अभ्यङ्ग मञ्जनं चाक्ष्णो,
रुपानच्छत्र धारणम्।
कामं क्रोधं च लोभं च,
नर्त्तनं गीत वादनम् ॥

शरीर में तेल न लगावे, आंखों में सुरमा न डाले, जूतियां न पहने, छाता न रक्खे, काम क्रोध लोभ को त्याग दे, अश्लील नृत्य तथा, गीत न गावे बाजा न बजावे।

द्यूतं च जनवादं च, परिवादं तथाऽनृतम्।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥

जुआ न खेले, पर चर्चा न करे, निन्दा न करे, झूठ न बोले, स्त्री को न देखे, न स्पर्श करे, पराई बुराई न करे।

एकः शयीत सर्वत्र, नरेतः स्कन्द येत्कचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन्नरेतो,हिनस्ति व्रत मात्मनः ॥

सर्वत्र अकेला सोवे, वीर्य्य पात न करे। ब्रह्मचारी काम से यदि वीर्यपात करता है तो वह अपने व्रत की हिंसा करता है। हमने भक्ति के पाठकों के हितार्थ ब्रह्मचर्य का महत्व और कुछ नियम लिखे हैं। आशा है भक्ति के पाठक इससे कुछ लाभ उठावेंगे।

मनुष्य को क्या करना चाहिये ?

इस जगत् में सकल जन सत्य, दम, क्षमा आदि गुणों की प्रशंसा करते हैं वास्तव में है भी यही बात। इन्हीं कर्मों के करने से मनुष्य बन्धन से छूट सकता है। एक बार युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा कि महाराज! इस असार संसार में जीव को ऐसा कौन सा कर्म करना चाहिये जिससे वह इन सब सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाय। तब पितामह जी ने उन को कहा:-

तप, दम, सत्य भाषणादि उत्तम धर्म कहलाते हैं इन का आचरण करते हुए मनुष्य को हृदय से रागादि की सकल ग्रन्थियों को दूर कर देना चाहिये। हर्ष और विषाद को वश में रखना चाहिये। किसी से मर्मान्तक और क्रूर बातें नहीं कहनी चाहियें। जिस बात के कहने से दूसरे को उद्वेग हो ऐसी अकल्याणमयी और नरक लोक को देने वाली वाणी न बोलना चाहिये। मुख से निकले हुए वाणी रूप बाणों के लगने से पुरुष रात दिन शोक किया करता है। दूसरे के मर्मस्थान को चीरने वाले ऐसे वाग्बाणों का कदाचित् भी प्रयोग नहीं करना चाहिये। विरोधी मनुष्य कुवाक्य रूपी बाणों के प्रहार से हृदय को बींध डालें तब भी धीर पुरुष को धैर्य ही रखना चाहिये। शत्रु के क्रोध दिलाने पर भी जो विचारवान् पुरुष क्रोध नहीं करता वह शत्रु के पुण्यों को हर लेता है।

क्षेपायमाण मभिषङ्गव्यलीकं,
निगृह्णाति ज्वलितं यश्च मन्युम्।
अदुष्टचेता मुदितोऽनसूयः
स आदत्ते सुकृतं वै परेषाम् ॥

जो पुरुष तिरस्कार कराने वाले और अप्रिय प्रतीत होते हुए क्रोध को अपने वश में कर लेता है, तथा जिसका चित्त शांत है प्रसन्न मन वाला है और जो ईर्षा से अलग रहता है वह पुरुष शत्रु के पुण्य को हर लेता है। निन्दा करने वाले को क्षमा ही करना चाहिये। आर्य पुरुष क्षमा, सत्य, सरलता और दया को उत्तम कहते हैं।

वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः।
दमस्योपनिषन्मोक्ष एतत् सर्वानुशासनम् ॥

वेद का रहस्य सत्य, सत्य का रहस्य दम और दम का रहस्य मोक्ष है यह सब शास्त्रों का आदेश है।

वाचो वेगं मनसः क्रोध वेगं,
विभित्सा वेगमुदरोपस्थ वेगम् ।
एतान्वेगान्यो विषहेदुदीर्णा-
स्तं मन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनिं च ॥

जो वाणी, मन, क्रोध, तृष्णा, उदर और उपस्थ के वेगों को रोकता है वही ब्राह्मण है वही मुनि है। जो प्रशंसा होने पर मीठी बातें नहीं बनाता, निन्दा होने पर अप्रिय वचन नहीं कहता उसकी संसार क्या देवता भी प्रशंसा करते हैं और वह परम सिद्धि को प्राप्त करता है। विद्याध्ययन करके पूरा विद्वान होने पर भी आचार्यों की उपासना करनी चाहिये विषयों की तृष्णा नहीं करनी चाहिये, कोई गाली दे तब भी गाली नहीं देनी चाहिये और शम दमादि को मोक्ष का मार्ग समझना चाहिये।

"न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित्"

मनुष्य जन्म से अधिक और कोई जन्म श्रेष्ठ नहीं है। मन को नियम में रखने वाला पुरुष सब का पूजनीय होता है और देवता भी उसका आदर करते हैं। समान के साथ वाद विवाद कर के अपनी आत्मा की निर्मलता का नाश न करे। जो पुरुष क्रोध से यज्ञ करता है, क्रोध से दान देता है उनके सब कर्मों के फलों को यमराज हर लेते हैं। जो पुरुष अपने उपस्थ, उदर, हाथ और वाणी इन की भली भान्ति रक्षा करता है और सत्य भाषण करता है वह पुरुष ही स्वर्ग में जाता है। सत्य से अधिक और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। जैसे समुद्र तरने के लिये नौका साधन रूप है इसी प्रकार से संसार को तरने के लिये और स्वर्ग में जाने के लिये सत्य संयम है। कपड़े जैसे रंग से रंगे जाते हैं उसी रंग के हो जाते हैं इसी प्रकार से जो जिसके साथ रहता है वह भी वैसा ही हो जाता है। इस हेतु मनुष्य को सर्वदा सन्त, तपस्वी श्रेष्ठाचार रखने वाले विद्वानों का संग करना चाहिये। जितने भोग पदार्थ हैं वह सकल नाशवान् हैं और जो कुछ भी नाशवान् है वह असत्य है। असत्य का सर्वथा परित्याग करना चाहिये। उदर और इन्द्रियों के पोषण करने वालों, कोर और कठोर वाणी बोलने वालों से सब कोई घृणा करता है। अतः इनका सर्वथा परित्याग ही श्रेष्ठ है। यह समस्त जगत् अज्ञान से घिरा हुआ है, मत्सरता से मनुष्य को अपने स्वरूप का भान नहीं होता मनुष्य लोभ से मित्र का त्याग कर देते हैं और विषयों के सङ्ग से मनुष्य को स्वर्ग प्राप्ति नहीं हो सकती इस हेतु कल्याण चाहने वालों को यह सब परित्याग करने चाहियें। वास्तव में यदि देखा जाय तो सब दुःखों का कारण अज्ञान अथवा अविद्या (झूठी वस्तु में सच्ची की भावना होना) है। इसी अज्ञान के कारण मृग रेत के टीले को जल समझ कर मीलों भटकता फिरता है इस अज्ञान की निवृत्ति के लिये मनुष्य को सद्गुरु की आवश्यकता होती है। बिना सद्गुरु के प्राप्त हुए ऊपर लिखी हुई एक भी बात को मनुष्य व्यवहार में नहीं ला सकता। न वह तप ही कर सकता है न सत्य भाषण ही कर सकता है नहीं उसके क्रोध की निवृत्ति हो सकती है। इसी हेतु इन सब बातों के ज्ञान के लिये गुरु की परमावश्यकता है।

गु शब्दस्त्वन्धकारोऽस्ति रुशब्दस्तन्निरोधकः"

गु नाम अन्धकार का है और रु नाम उसके नाश करने वाले का। इसलिये गुरु ही अज्ञान रूपी अन्धकार के नाश करने वाले हैं। मनुष्य अज्ञानी है उसको ज्ञान के लिये गुरु की आवश्यकता है। बिना गुरु के सत्य और असत्य का, धर्म और कर्म का भी ज्ञान नहीं हो सकता है। इस हेतु सर्व प्रथम मनुष्य का कर्तव्य है कि वह सद्गुरु की शरण में जावे और उनके मुख बिन्दु द्वारा निकले वाक्यों को श्रवण करे फिर मनन करे और पश्चात् निदिध्यासन करे यही पूर्ण बोध का उपाय है। गुरु का त्याग करने से मृत्यु होती है मन्त्र त्याग से दरिद्रता आती है और गुरु और मन्त्र दोनों के त्याग करने वाला रौरव नरक में जाता है। गुरु ही शिव हैं गुरु ही देव हैं, गुरु ही आत्मा है, गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है और गुरु ही परब्रह्म है। उनकी ही आराधना, पूजा और भक्ति करने से सब अलभ्य पदार्थों की प्राप्ति होती है इस कारण से उपरोक्त समस्त कल्याण कारी बातों की साधना के हेतु सद्गुरु की शरण में जाना रूपी कर्म मनुष्य का मुख्य धर्म है।

भूमानन्द ब्रह्मचारी

मनो वृत्तियों की मादकता।

(ले० पं० ज्ञानचन्द्र शास्त्री कनखल)

संसार भर में समझदार मनुष्य शराब पीना बुरा समझते हैं। तन पर सिर और सिरपै अकल रखनेवाले सारे ही लोग शराब को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यह इसलिए मत समझो कि केवल धर्मशास्त्रों में इसका निषेध किया गया है, अपितु इसलिए भी कि उसके साक्षात् फल दुःख दाई नजर आते हैं। यह बात नहीं है कि मद्य शारीरिक स्वास्थ्य के लिये सर्वदा और प्रत्येक अवस्था में हानिकारक हो। मात्रासे अधिक पीने पर तो उस से रोगों की उत्पत्ति अवश्य होती है परन्तु मात्रा के अनुकूल सेवन करने से वह तन्दुरुस्ती को बहुधा लाभ भी पहुंचाती है (इससे हमारा तात्पर्य यह नहीं है कि स्वास्थ लाभ के अर्थ मनुष्य अल्प मात्रा में मद्य का सेवन करने लगें) लोग कहते हैं कि इस के द्वारा धनका नाश हो जाता है, परन्तु हम कहते हैं कि धनका नाश अथवा दरिद्रता अपव्यय के कारण ही होती है। इसके सिवाय यदि तुम्हें अपना धन नष्ट होने का भय न हो तो क्या तुम शराब पीने लगोगे? सारांश यह है कि स्वास्थ्य की हानि, धन का नाश, झगड़ालुपन इत्यादिक दोष इतने व्यापक नहीं हैं कि जिन के कारण मद्य का स्पर्श तक नीच समझा जावे। तब फिर ऐसी अवस्था में मद्य का वह कौनसा अवगुण है जो इन सब से भारी है? हम कहते हैं कि वह है मद्यका मोहकपन। चित्त को वह इतना विक्षिप्त बना देता है कि मद्यपायी को अच्छे और भले का ज्ञान नहीं हो सकता। मद्यका यह मोहकपन विचारशक्ति को नष्ट करके पीने वाले को पूरा पशु बना देता है। अपनी हानि लाभ को जो विचार नहीं सकता जिसे जननी और पत्नी तक के पहचानने की संज्ञा नहीं रहती उसके समान भयंकर जन्तु और कौन होगा। प्राचीन समय की बात को, मनुष्य को

गधा बना देने वाली मन्त्र विद्या का नाम सुनकर हमें आज भी भय मालूम होता है, परन्तु अपनी आंखों के सामने मनुष्य को गधे बनते देख कर हमें जरा भी खेद नहीं होता। भले और बुरे को विचारने की शक्ति इतनी बहुमूल्य है कि हमें धन कुटुम्ब और प्राणों तक को खो देना मन्जूर है, परन्तु उसे खोना स्वीकार नहीं है, जो शत्रु हमारी इस बहुमूल्य सम्पत्ति को हरण करने वाला है। उस के समान द्रोही और कौन है?

धर्मग्रन्थों में आचार्योंने मद्यपान का निषेध इसीलिये किया है कि उसके कारण मनुष्यत्व जाता रहता है, भला और बुरा सोचने की शक्ति नष्ट हो जाती है। शराब के दोषों को दिखाने वाली और उसका प्रचार रोकने वाली समितियां मनुज जाति के धन्यवाद की पात्र हैं क्योंकि वे सैंकड़ों हजारों सभ्यता और पथभ्रष्ट मनुजों की बुद्धि को नष्ट होने से बचाती हैं।

जड़ संसार की ओर से आंख उठा कर जब हम हृदय के भीतर देखते हैं तो मारे भयके हमारा कलेजा कांपने लगता है। परमेश्वर! मद्य के दादा परदादा, भाई बहिन, और सारा कुटुम्ब तो हमारे हृदय ही में आश्रय ले रहा है! अधिक नहीं केवल क्रोध, लोभ, ईर्षा, अभिमान और स्वार्थ ही की ओर दृष्टिपात करो, और देखो कि क्या यह मद्य से अधिक मादक नहीं हैं। बाहरी नर-जाति! "दियातले अन्धेरा" इसीका नाम है। बड़े २ महात्माओं को देखिये, यदि मद्यपाई की परछाईं भी उन के ऊपर पड़ जावे तो दश बार स्नान करेंगे, परन्तु उन्हीं में क्रोध की मात्रा इतनी ज्यादा देख पड़ेगी कि थोड़ा भी कारण प्रस्तुत होने पर वह आप को शाप देने के लिए तय्यार हो जावेंगे। केवल शाप इसलिये कि उन के पास तलवार नहीं है और कानून उन्हें दबाये हुए है।

मनुज की नीच वृत्तियों में क्या सचमुच इतना नशा मौजूद है कि वह शराब से सौगुनी तेज समझी जावे? यदि विचार पूर्वक केवल क्रोध के परिणामों परही विचार करें तो विदित होगा कि सचमुच क्रोध का नशा मद्य के नशे से कई गुणा अधिक है। यदि मद्य में मतवाला पुरुष एक दो दिन संज्ञा हीन रहता है तो चांडाल क्रोध का नशा क्यों नहीं उतरता। मनुज मद्यके नशे में मतवाला होकर यदि कोई अनर्थ भी कर बैठता है तो चैतन्य लाभ करने पर उसके लिए पश्चात्ताप करता है और अपनी भूल को बिना झिझक स्वीकार करता है। परन्तु क्रोध के आवेश में आकर पुरुष जो २ अनर्थ करता है उनको वह ठीक २ और न्याय संमत समझ बैठता है। इसी भांति लोभ के दुरिणामों को विचारने से भी हृदय कांप उठता है। संसार में आज तक जितने भयानक पाप और हत्यायें तथा रक्त की नदियों का बहाने वाले भीषण संग्राम हुए हैं, उन में प्रायः सभी का कारण लोभ पाया जावेगा। कहां तक कहें, शराब और लोभ को समान प्रतिपादन करना अन्याय पूर्ण है।

ईर्षा और स्वार्थ के विषय में विचार करने से मालूम होता है कि नर-जाति की जितनी हानि इन राक्षसों द्वारा हो रही है वह वचनातीत,

है। साधारण पुरुष की तो बात ही क्या है। बड़े २ महात्मा भी इन के चुंगल से छुटकारा नहीं पा सकते। व्यक्तिगत अनर्थों की बात तो जाने दीजिये, किन्तु सभ्यता को इनके द्वारा कितनी हानि पहुंच रही है यह विवेचना करनी चाहिए। राष्ट्रों को पारस्परिक प्रतिद्वन्दता और विरोध, व्यापार की चढ़बढ़ तथा शक्ति के लोभ के कारण कैसे २ महासमर उपस्थित हैं। बड़े २ वैज्ञानिक स्वार्थान्ध हो कर नर जाति के संहारक यंत्रों का आविष्कार करके उन्हें गोपनीय रखते हैं। शासित जातियों को चिरकाल पर्यन्त गुलामी में जकड़े रखने का नीच प्रयत्न भी तो स्वार्थ ही की करामात है। यदि इन दोनों दुष्टों का मुंह काला कर दूर भगाया जावे तो नर जाति की उन्नति का भारी कंटक दूर हो जावे।

जिस समय पुरुष अपनी वृत्तियों के अधिकार में हो जाता है उस समय वह अन्धा हो जाता है। इस का मतलब यह नहीं कि उसे कुछ सूझ ही नहीं पड़ता, परन्तु उसे जो कुछ दिखाई देता है उसे वह यथार्थ रूप से नहीं देख सकता। क्रोधी पुरुष को, जिस ओर वह देखता है, उसी ओर, क्रोध की सामग्री ही नजर आती। इसी प्रकार लोभ का तीव्र संचार होने पर लोभी पुरुष जैसे बने वैसे अपनी इच्छित वस्तुओं को अधिकृत करना चाहता है। वह सोचता है कि हाय आज एक रुपये के दो मन चावल क्यों नहीं बिकते, परमात्मा ने संसार की सारी सामग्रियों को क्यों महंगा कर रक्खा है। फलतः उस के मन में बड़ी भारी वेदना होने लगती है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जावे तो जगत् का सारा जन समुदाय आंखों पर पट्टी बन्धे हुये घोड़ेकी नाईं मनमानी दिशाओं में भाग रहा है।

मानसिक अशान्ति का कारण क्या है? पुरुष चाहते हैं कि संसार के सब पदार्थ अपने २ स्वभाव को छोड़ कर उन्हीं की इच्छानुकूल बर्ताव करने लग जावें, परन्तु पदार्थ बेचारे ऐसे करने से लाचार हैं। इसलिये जब वह पुरुषकी इच्छाकी पूर्ति नहीं करते तभी वह खिसिया कर दुःखी होने लगता है। क्या ही अच्छा होता कि पुरुष वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को देख कर निजावश्यकताओं को उन के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता। परन्तु स्मरण रहे कि जब तक हम अपनी मनोवृत्तियों पर अधिकार प्राप्त (Control) करना न सीखेंगे तब तक कल्याण और मंगलमय सुखकी प्राप्ति नितरां असम्भव है।

आध्यात्मिक उन्नति और सच्चे सुखको प्राप्तकरने करने का राजमार्ग मनोवृत्तियों का शासन है। जो लोग इन के दास बन कर अपनी इच्छाओं की पूर्ति के प्रयत्नों में ही मग्न रहते हैं, उन का आत्मा सदैव दुर्बल रहता है। आवश्यक सामग्री के उपस्थित न होने पर उन्हें जैसा तीव्र दुःख होता है उस का अनुभव उन्हीं को होता है। इसी दुःख में उन्मत्त हो कर वह अनेक प्रकार के अनर्थ कर बैठते हैं। यदि ऐसे दुःखोंसे छुटकारा पाना है तो अपनी इच्छाओं के दास मत बनो। प्रत्येक इच्छा के उत्पन्न होने पर देखना चाहिये कि कौनसी मनोवृत्ति उत्तेजित होकर उस इच्छा को उत्पन्न कर रही है। निदान यदि वह इच्छा न्यायसंगत न हो तो उसे रोको

और बल से यत्न पूर्वक रोको और अपने हृदयके अन्दर फिर कभी उसे स्थान न दो। इसमें सन्देह नहीं प्रथम तो कठिनता प्रतीत होगी और सम्भव है कामयाबी भी न हो, परन्तु सतत प्रयास से और निरन्तर अभ्यास से आप को अवश्य विजय होगी, और आप मनोवृत्तियों की भावुकता पर अधिकार जमाने में सिद्ध हो जावेंगे।

मैत्रयाणी उपनिषद्।

प्रथम प्रपाठक।

बृहद्रथ नामक राजा ने अपने बड़े पुत्र को राजा के स्थान में स्थापित किया। राजा इस शरीर को अशाश्वत मानता था, वैराग्य उत्पन्न होने से वह अरण्य में गया, वहां जाकर उसने परम तपश्चर्या की, ऊंचे बाहु करके श्री सूर्य नारायण के समक्ष खड़ा रहा। अन्त में सूर्य नारायण की कृपा से राजा के पास एक मुनि आया। वह मुनि धूवें रहित अग्नि के समान अपने तेज से सर्व को दहन करने वाला आत्मज्ञानी था, उस मुनि का नाम भगवान् शाकायन्य था, उसने राजा से कहा "हे राजन्! खड़ा हो और बरदान मांग।" राजा ने मुनि को नमस्कार किया और कहा "हे भगवन्! मैं आत्मज्ञानी नहीं हूं, आप तत्त्व ज्ञानी हैं, जो आप उपदेश करेंगे सो मैं एकाग्र चित्त होकर सुनूंगा" मुनि ने कहा "हे ऐक्ष्वाक! तू कोई अन्य वरदान जो तेरी इच्छा में आवे सो मांग क्योंकि इस मनुष्यशरीर से आत्मज्ञान की प्राप्ति होना अशक्य है।" तब राजा मुनि का चरण स्पर्श करके इस प्रकार कहने लगे (१) हे भगवान्! यह शरीर, हड्डी, चमड़ी, स्नायु, मज्जा, मांस, वीर्य, रक्त, श्लेष्म और बालों से दूषित है। यह विष्ठा, मूत्र, वात, पित्त और कफ से पूर्ण है दुर्गंधि युक्त है और सर्व प्रकार के सार से रहित है, इस से भोग की कामना का क्या प्रयोजन है! (२) यह शरीर काम, क्रोध, लोभ, भय शोक, ईर्षा, इष्ट वस्तुओं का वियोग, अनिष्ट का संयोग, क्षुधा, तृषा, जरा, मृत्यु रोग और शोकादिक से पूर्ण है। ऐसे शरीर के उपभोग से क्या फल होगा! (३) इस लोक में सब नाशवन्त है। डांस मच्छर और तृण के समान नाश को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सब का मरण जन्म हुआ ही करता है। (४) कितने बड़े धनुर्धारी, चक्रवर्ती हो गये हैं जैसे कि सुद्युम्न, भूरिद्युम्न इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, अश्वपति, शश बिन्दु, हरिश्चन्द्र, अंबरीष, ननयाति, ययाति, अनरण्य, उक्षसेनादय, मरुत, भरत आदिक राजाओं ने अपने बंधु वर्ग के रक्षण अर्थ अनेक प्रकार की लक्ष्मी संपादन की, उसका त्याग कर के इस लोक से पर लोक को चले गये (५) और भी गंधर्व, असुर, यक्ष, राक्षस, भूत गण, पिशाच, सर्प और ग्रहों के निरोध को देखते हैं। (६) और बड़े महा, सागर भी सूख जाते हैं, पर्वतों का नाश हो जाता है। अचल पदार्थों का हिलना अथवा उसी स्थान पर बैठ जाना होता है वृक्षों का टूट जाना, पृथ्वी स्थान में छेद और देवताओं के सोऽहं ऐसे शब्दोच्चार से क्या? इस संसार के भोग कुछ काम के नहीं हैं उन का आश्रय किया जावे तो बारंबार जन्म मरण हुआ करता है। आप इस संसार में से मेरा

उद्धार करने योग्य हैं। जैसे जल बिना अंधेरे कुए में मेंढक हो इस प्रकार संसार में हमारी स्थिति है। हे भगवन् आप मेरे आश्रय रूप हैं॥ ७॥"

दूसरा प्रपाठक।

भगवान् शाकायन्य प्रसन्न हो कर राजा से कहने लगे "हे महाराज बृहद्रथ! तू इक्ष्वाकु वंश के ध्वज शीर्ष का पुत्र है, तू कृत कृत्य है और मरुत् ऐसे नाम से प्रसिद्ध है। आत्मा कैसा है, उस का मैं वर्णन करता हूं, वह तू श्रवण कर। (१) यह प्राणात्मा बाह्य इन्द्रियों के रोधन करने रूप योग से ऊर्ध्व गति [illegible] वाला, दुःख से रहित और तम का नाश [illegible] वाला है। यह आत्मा जीव भाव में से [illegible] शिव भाव को प्राप्त हो कर अपने तेज में [illegible] होता है। यह आत्मा अमृत रूप, [illegible] रूप है। (२) हे राजन्! भगवान् मैत्रेय ने [illegible] विद्या रूप उपनिषदों का जो हम से वर्णन किया है सो मैं तुझ से कहूंगा। पाप से रहित, उत्कृष्ट तेज वाले, और नैष्ठिक ब्रह्मचारी वालखिल्य नाम के मुनि कहलाते हैं वे एक समय प्रजापति के पास जाकर कहने लगे 'हे भगवन्! [illegible] के समान चेतना से रहित यह शरीर है। ऐसे शरीर को प्रेरणा करने वाला कौन है? सो आप [illegible] कहो।' तब भगवान् ब्रह्मा ने कहा (३) 'जो [illegible] में रहने वाला कहलाता है वह ही शुद्ध, [illegible] प्राण रहित, मन रहित, अनन्त, अजर, [illegible], [illegible], अज, स्वतंत्र और अपनी महिमा [illegible] है, उस से यह शरीर चेतन समान होता है [illegible] ही इस शरीर को प्रेरणा करने वाला है।' तब वालखिल्य कहने लगे 'हे भगवन्! इस इच्छा से रहित ने इस चेतना वाले शरीर को क्या प्रेरणा की? इस शरीर को प्रेरणा करने वाला किस प्रकार है सो कहो' प्रजापति कहने लगे "यह आत्मा सूक्ष्म, अग्राह्य, अदृश्य, पुरुष संज्ञा वाला, अपने अंश से बुद्धि पूर्वक आवर्त करने वाला, सुषुप्त को बुद्धि पूर्वक जाग्रत करने वाला, इच्छाओं को वश करने वाला, चेतन मात्र, सब शरीरों में क्षेत्रज्ञ रूप से रहने वाला, संकल्प, प्रयास और अभिमान वाला, प्रजापति रूप और सर्वज्ञ द्रष्टा रूप है इस प्रकार के चेतन ने इस शरीर को चेतन वाला किया है, इस लिये यह प्रेरणा करने वाला कहलाता है।' तब मुनि ने कहा 'जो आत्मा सूक्ष्मादि स्वरूप वाला है उस को अपने अंश करके ऐसा वर्ताव किस प्रकार सम्भव है?' भगवान् प्रजापति ने कहा (५) आद्य में एकमात्र प्रजापति था, उस को न सुहाया तब उस ने आत्मा का ध्यान करके अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न की। उत्पन्न की हुई इस प्रजा को प्राण से रहित और स्थाणु की समान स्थिर देखा इस लिये उस को ठीक नहीं लगा। प्रजापति ने विचार किया कि मैं उस में प्रवेश करके उस को गतियुक्त करूं इस लिये उसने एक रूपसे प्रवेश नहीं किया उसने वायु रूप बन कर प्रजा में प्रवेश नहीं किया परंतु पांच प्रकार का होकर प्रवेश किया। ये पांच वायु प्राण, अपान समान, उदान और व्यान हैं। (६) जो ऊर्ध्व गति करता है सो प्राण है, जो नीचे गति करता है सो अपान वायु है, जो स्थूल सूक्ष्म अन्न धातु को अपान में योजता है और सब अंगों में वायु को सम भाग में रखता है, उस को समान कहते हैं, जो जल और अन्न को ऊपर नीचे ले जाता है, उस को उदान

कहते हैं। जो नाड़ियों में व्याप्त होकर रहता है उस को व्यान कहते हैं (७) अदृश्य प्राण वायु व्याप्त हो कर रहने वाले प्राण वायु को अभिभव करता है। इन दोनों प्राण वायु के मध्य में जो मांस रूप में उष्णता है, यह ही पुरुष रूप है, उस से जिस अन्न का भक्षण किया जाता है, वह पचन होता है। जब कान को दबा देते हैं तब जो घोष सुनने में आता है, यह उस का ही है। जब यह प्राणात्मा शरीर में से जाता है तब घोष सुना नहीं जाता (८) यह आत्मा अपनेको मनोमय, प्राण शरीर, प्रकाशरूप, सत्य संकल्प और आत्मा इस प्रकार पांच प्रकार से विभक्त करके हृदयाकाशमें रहता है। हृदयाकाश में रहने से वह मनोमयादिकों को अकृतार्थ मानने लगा। वह अपने पांच द्वारों को भेदन करके प्रकट होता है और पांच रश्मि रूप इन्द्रियों से विषयों का भक्षण करता है। इस में बुद्धि इन्द्रियादि रश्मि रूप हैं, कर्मेन्द्रियां अश्व रूप हैं, शरीर रथ रूप है, मन सारथी रूप है और स्वभाव चाबुक रूप है। इस प्रकार प्रेरित हुआ शरीर चक्र की समान घूमा करता है। मरने के पीछे शरीर चेतन वाला नहीं दीखता इस लिये आत्मा को शरीर का प्रेरक कहा है (९) यह आत्मा शरीर के वश में हो, शुभाशुभ कर्म के फल से अभिभव को प्राप्त हुआ हो इस प्रकार सब शरीर में संचार करता है। अव्यक्त, सूक्ष्म अदृश्य, अग्राह्य और ममता से रहित होने से सब प्रकार की अवस्थाओं से रहित है। कर्तृत्वभाव से रहित है तो भी कर्ता रूप हो ऐसे रहता है। (१०) आत्मा, शुद्ध, स्थिर दुःख रहित, स्पृहा रहित हुआ रूप रहता है और अपने चरित्रों को भोगता हुआ गुण रूप वस्त्र से वेष्टित हो कर रहता है (११)

तीसरा प्रपाठक।

बालखिल्य कहने लगे 'हे भगवन्! आप आत्मा की महिमा इस प्रकार कहते हैं तब शुभाशुभ कर्म से अभिभव को प्राप्त होने वाला और इस से असत् योनियों को प्राप्त होने वाला आत्मा क्या कोई और है? सुख दुःखादि द्वन्द्व वाली ऊंच नीच गति में कौन भ्रमण करता है?' ऐसा प्रश्न सुन कर प्रजापति ने कहा (१) 'दूसरा भूतात्मा है जो शुभाशुभ कर्म के फल से अभिभव को प्राप्त हो कर सत् असत् योनियों को प्राप्त होता है और सुख दुःखादि द्वन्द्व भाव से अभिभव को प्राप्त हो कर ऊंच नीच गति में भ्रमण करता है। यह भूतात्मा इस प्रकार है:-भूत शब्द से पांच तन्मात्रायें कहा है।

इन पंच महाभूतों के समुदाय को शरीर कहते हैं। यह जो शरीर है उसी को भूतात्मा कहते हैं। इस में रहने वाला आत्मा कमल पर जल की बिन्दु समान रहता है। यह अपने प्राकृत गुणों से अभिभव को प्राप्त होता है इसी से मोह को प्राप्त होता है और मोह से आत्मा में रहने वाले कर्ता रूप प्रभु भगवान् को नहीं देखता है। गुणों के समूह से तृप्त, पापयुक्त, अस्थिर, चंचल, लालसायुक्त, स्पृहावाला, व्यग्र, अभिमानको प्राप्त और इसी लिये शिव भाव से रहित मेरा भाव वाला हो कर जिस प्रकार पक्षी जाल से बन्धन में पड़ता है इसी प्रकार आत्मा को आत्मा से बांधता है

और यह जीव किये हुये कर्मों का फल भोगता हुआ भ्रमता है ॥ २ ॥ जो कर्ता है वह ही भूतात्मा है। इन्द्रियों के निमित्त से अन्तः पुरुष कर्मों का कराने वाला है। जैसे लोह पिंड अग्नि से आवृत होकर कर्ता से कूटा जाता है तब विविध भाव को प्राप्त होता है। चौरासी लक्ष योनियों के प्रमाणुओं वाला त्रिगुणात्मक भूतात्मा होता है, यह ही उस के विविध प्रकार के रूप हैं। जैसे लोह पिंड को कूटने से उस में रहने वाले अग्नि का पराभव नहीं होता वैसे ही पुरुष का अभिभव नहीं होता परन्तु भूतात्मा का संसर्ग के दोष से अभिभव होता है ॥ ३ ॥ इस शरीर का उद्भव मैथुन से है, नरक रूप है, मूत्र द्वार से बाहर निकलता है, हड्डीयों से बनता है, मांस से वेष्टित होता है, चर्म से बंधा होता है और विष्ठा, मूत्र, पित्त, कफ, मज्जा, मेद, शिरा, और अन्य मल से पूर्ण एक दूसरे के समान है। ४। संमोह, भय, विषाद, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, जरा क्षुधा, पिपासा कृपणता, क्रोध, नास्तिक्यता, अज्ञान, मत्सरता, क्रूरता, मूढता, निर्लज्जता, निराशितता, उद्धतपना, असमता आदिक गुण इस शरीर में हैं। यह भूतात्मा (शरीर) तामस् गुण युक्त होने से तृष्णा, राग, लोभ, हिंसा में प्रीति और देखने में आसक्ति, ईर्षा, कामना की स्तुति करना, चंचलता, लेने की इच्छा, अर्थ की प्राप्ति मित्र में अनुग्रह, परिग्रह, आश्रय, इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों में द्वेष, इष्ट विशयों में प्रीति, इस प्रकार के अनेक राजस् गुणों से भूतात्मा परिपूर्ण होता है इस लिये अनेक रूपों को प्राप्त होता है" ॥ ५ ॥

अपूर्ण।

कर्म

कर्म दो तरह के होते हैं एक सकाम दूसरा निष्काम। अपने २ समयों पर दोनों प्रकार के कर्म काम करते रहते हैं।

जब दिल्ली का बादशाह फर्रुखशीर अत्यन्त रोग वश हो गया और हकीमों और वैद्यों की तरफ से उसका जीवन असम्भव होगया, तो यूरोप के एक डाक्टर ने अपना इलाज आरम्भ कर दिया। उस के हाथ में यश था। रोगी बादशाह रोग रहित होकर निरोग हो गया। बादशाह को नया जीवन मिलने से खुशी प्राप्त हुई। तब डाक्टर को मुंह मांगी इनाम देनी मंजूर कर ली। डाक्टर ने धन नहीं मांगा, जागीर नहीं मांगी, हकूमत नहीं मांगी, प्रतिष्ठा नहीं मांगी। तो क्या मांगा? केवल यही कि मेरी जाति के जो व्यापारी उस के राज्य में आवें उनका कर मांफ हो। बादशाहने उसकी इस छोटीसी परन्तु गहरी इच्छा को तुरन्तही पूराकर दिया जिस से उस डाक्टर के देशी भाइयों को भारत वर्ष में व्यापार करना बहुत आसान काम होगया। यही नहीं बल्कि निगाह उठाकर देखने से पता लगता है कि वही जाति आज व्यापार, हकूमत और विद्या की मालिक बनी बैठी है। उस डाक्टर का यह काम यद्यपि सकाम कर्म था तो भी ऐसा काम उस की जाति के लिए परोपकार और धार्मिक माना जाता है।

जब बेचारे छोटे से मुलक जापान पर रूस जैसे बड़े प्रबल राज्य ने चढ़ाई की तो जापान के बहुत से पुरुष और स्त्रियों ने अपना सब कुछ

न्योछावर कर दिया और अपने देश का नाम रख लिया। वही देश अब दूसरे बड़े २ देशों के समान उन्नति को प्राप्त हो रहा है। जापानी लोगों का यह कर्म भी सकाम कर्म था लेकिन लोगों की निगाहों में यह भी एक धार्मिक कर्म समझा जाता है। अब एक कहानी निष्काम-कर्म के विषय में सुनाते हैं।

एक चक्रवर्ती राजा के राज्य में उसकी राजधानी से हज़ारों कोस दूर एक देश में वर्षा न होने के कारण अकाल पड़ गया। राजा के नौकरों ने जो उस देश के प्रबन्धकर्ता थे राजा के पास इस की ख़बर पहुंचाई। राजा ने जो बड़ा न्यायकारी और दयालु था अपने कोष में से लाखों रुपया उस देश के दुःख निवारण करने के लिए मंज़ूर कर दिया और अपने नौकरों को आज्ञा दी कि, उस देश में एक ऐसी नहर खुदवादी जाय, जो अकाल पड़ जाने के समय नदियों का पानी उस देश में पहुंचा सकें और उन देश वासियों को फिर कभी अकाल का मुंह देखना न पड़े। इस काम पर उस देश के ऐसे सारे मनुष्यों को लगाया जाय जिनको मज़दूरी नहीं मिलती है। बहुत लोग इस काम पर आने लगे और नित्य अपने काम की मज़दूरी लेने लगे। उन में एक ऐसा मज़दूर भी आ शामिल हुआ जो उस नहर की खुदाई में दूसरे मज़दूरों की तरह काम करने लगा। परन्तु सायंकाल को जब मज़दूरी बांटने का समय होता तो वह अनुपस्थित हो जाता। राज्य के कर्मचारियों को उसकी मज़दूरी अमानत में जमा करके अपने कागज़ में बाकी निकालनी पड़ती थी। प्रति दिन एक नक़शा खुदाई नहर का राजा के पास भेजा जाता था जिस से मालूम होता था कि प्रति दिन कितने मज़दूर काम पर आए। उनकी क्या मज़दूरी हुई, कितनी दी गई कितनी देनी बाकी है और किस कारण से?

नित्य का हिसाब देखने से राजा का ध्यान उस मज़दूर की ओर जाने लगा जो हाज़री और काम करने के समय तो हाज़िर, परन्तु मज़दूरी के टके मिलने के समय ग़ैर हाज़िर। एक महीना गुज़र गया दूसरा शुरू हुआ। इसी प्रकार कई महीने बीत गए उसी मज़दूर की सैंकड़ों रुपयों की रक़म देनी हिसाब में बराबर बाकी रही। जब पूरा १ वर्ष व्यतीत हो गया तो भी उस मज़दूर की मज़दूरी बराबर देनी बाकी। राजा को इससे बहुत आश्चर्य हो गया और उस मज़दूर को देखने की इच्छा उत्पन्न हुई जिस ने एक वर्ष तक बराबर मुफ़्त काम किया और मज़दूरी छोड़ दी। अकाल से मारे हुए देश के प्रबंधकर्ता को जब यह समाचार ज्ञात हुआ कि दुनियां का राजा आ रहा है तो उस के आराम के लिए सब प्रबन्ध ठीक कर दिया। जब राजा उस देश में पहुंचा तो वहां के प्रबन्धकर्ता ने राजा को अपना सारा काम दिखाना चाहा। राजा ने उत्तर दिया कि मैं तुम्हारे इस काम के देखने के लिए नहीं आया हूं मैं तो उस मज़दूर के दर्शन करने आया हूं जिस ने पूरे वर्ष तक बराबर मज़दूरी करके अपनी मज़दूरी का एक पैसा भी नहीं लिया। प्रबन्ध करता ने तुरन्त उस मज़दूर को राजा के सामने पेश कर दिया। राजा ने उस को प्रेम की दृष्टि से देखा और पूछा कि, तुम्हारे मज़दूरी न लेने का क्या कारण है? मज़दूर ने

उस का यह साधारण उत्तर दिया कि जब आप जैसे राजा अपनी प्रजा के आराम के लिए लाखों रुपये अपने खज़ाने में से खर्च ,कर रहे हैं तो मैं भी यथा शक्ति इस काम में मदद देने लग जाऊं तो यह मेरा धर्म ही है। इस लिए मैंने अपने धर्म को पूरा करने के लिये यह काम किया है। मेरा थोड़ा सा कब है उस को थोड़ी देर रात को मज़दूरी करने से पूरा कर लेता हूं। राजा को इस की बात सुन कर आश्चर्य हुआ और विचार किया कि यदि ऐसे धर्मात्मा पुरुष को यदि अपना मन्त्री बनालू तो प्रजा के हितके लिए बहुत लाभ हो। ऐसा सोच कर उस मज़दूर को मन्त्री की उपाधी लेने को कहा। उस ने उत्तर दिया कि न मेरे शरीर में इतना बल है, न मुझ में इतनी विद्या है और न बुद्धि हो जिस से मैं इतने बड़े भारी काम को पूरा कर सकूं। राजा ने कहा हमें तुम्हारी शारीरिक शक्ति की आवश्यकता है, विद्या और बुद्धि की नहीं। हमें तो तुम्हारे उस मन की आवश्यकता है कि जिस की प्रेरणा से तुम ऐसा धर्म का कार्य कर रहे हो। उसने राजा की बात को मान लिया और वही मन लेकर राजा की ओर से उस के सारे राज्य के कामों को करना आरम्भ किया। जब राजा के मंत्रियों को यह हाल मालूम हुआ कि राजा ने एक साधारण मज़दूर को प्रधान मन्त्री की पदवी दे दी है। तो वह सब के सब ईर्षा और लोभ से जलने लगे और राजासे कहने लगे कि यह काम आपकान्याय में शामिल नहीं है। न्याय तो यह था कि यह पदवी हम को दी जाती। राजा ने इस समय एक कहानी उन को सुनाई जिस का तात्पर्य यह था।

एक रईस बड़े भारी बाग़का मालिक था। उसमें उस के बहुत मज़दूर काम किया करते थे एक दिन वह रईस प्रातःकाल बाज़ार में घूमने निकला। देखा कि कुछ मज़दूर टोकरी फावड़ा हाथ में लिए बाज़ार में मज़दूरी करने के लिये फिर रहे हैं। रईस ने उन से पूछा क्या तुम मेरे बाग़ में मज़दूरी करोगे? उन्होंने कहा कि हां। रईस ने पूछा कि श्याम तक क्या मज़दूरी लोगे? उन्होंने कहा प्रति आदमी १) रु०। रईस ने कहा अच्छा जाओ हमारे बाग़ के दरोगा के पास चले जाओ वह तुम्हें काम पर लगा देगा। उन्होंने बाग़ में जाकर काम करना शुरू कर दिया। दोपहर के समय फिर रईस बाज़ार में घूमने को निकला और देखा कि कुछ और मज़दूर मज़दूरी के लिए फिर रहे हैं। रईस ने उनसे पूछा क्या तुम मेरे बाग़ में काम करोगे? उन्होंने कहा कि हां। रईस ने उनको भी बाग़ के दरोगा के पास काम करने को भेज दिया और उन्होंने जाकर अपना २ काम करना आरम्भ कर दिया। जब दो घड़ी दिन बाकी रहा तो फिर रईस बाज़ार में सैर करने निकला, देखा कुछ मज़दूर और भी मज़दूरी के लिये फिर रहे हैं। रईस ने उनसे पूछा क्या तुम मेरे बाग़ में काम करोगे उन्होंने कहा हां। रईस ने उनको भी बाग़ के दरोगा के पास भेज दिया। उन्होंने भी अपना काम आरम्भ कर दिया जब दिन छुप गया तो रईस अपने खज़ांची साथ लेके मज़दूरी बांटने बाग़ में पहुंचा। पहिले पहल उन मज़दूरों को बुलाया जो प्रातः कालसे शामतक लगे रहे थे। उनको एक २ रुपया देकर विदा कर दिया। फिर उन मज़दूरों को बुलाया जिन्होंने दोपहर से शाम तक काम

किया था। उनको भी एक २ रुपया देकर विदा कीया। तीसरी वार उन मज़दूरों को बुलाया जिन्हों ने केवल दो घड़ी ही काम किया था। उनको भी एक २ रु० देकर विदा किया। बाहर निकलने पर जब सबके सब मजदूर इकट्ठ हुये तो उन्होंने आपस में अपने २ काम करने और मज़दूरी मिलने का जिकर किया। यह सुनकर उन मज़दूरों ने जिन्होंने पूरा दिन और आधे दिन काम किया था रईस पर नाराज होकर कहा कि उसने अन्याय किया है, उन को मजदूरों के टके देने पर उन्हीं मज़दूरों के समान समझ लिया जिन्होंने केवल दो घड़ी काम किया था। कहां १२ घंटे और कहां ६ घंटे और कहां १ घंटे जैसी कम। और मज़दूरी के टके सबको बराबर यह कहां का न्याय है! यह तो पूरा २ अनर्थ है। और सबके सब रईस के पास जा पुकारे। रईस ने उन लोगों की तरफ देखा जिन्होंने सारे दिन भर काम किया था और पूछा तुमनेसारे दिनके लिये कितने टके मज़दूरीके मांगे थे? और उनको कितने २ टके मजदूरी के मिल चुके? उन्होंने कहा एक २ रुपया। रईस ने कहा फिर इससे क्या अन्याय हुआ? उन्होंने कहा कि जिन्होंने केवल दो घड़ी ही काम किया है उनको भी एक रुपया और हमको भी एक रुपया जिन्होंने दिन भर टोकरी ढोई है। यही पुकार उन लोगों ने की जिन्होंने आधे दिन काम किया था। रईस ने कहा कि जिस थैली से तुम्हें यह मज़दूरी के टके मिले उसमें किसका रुपया था। उन्होंने कहा मेरा। रईस ने कहा कि जब रुपया मेरा था तो इसके खर्च करने का अधिकार मुझको है यदि मैं किसी को मुफ्त ही देने लगू तो भी मेरा यह अन्याय नहीं हो सकता। हां अगर मैं किसी की नियत मजदूरी काट कर किसी को देदूं तो यह मेरा अन्याय होगा। चाहे उन मजदूरों की तसल्ली हो या न हो रईस का ऐसा जवाब सुनकर चुप हो के अपने २ घरों को चलदिये। राजा के यह वचन सुनकर मंत्रि चुप होगये और अपने २ घर चले गये।

मजदूर, परन्तु अब राजा का प्रधान मंत्री अपना वही पिछला सा मन साधरण राजाका कार्य भार देखने लगा। राजा का जो समय इस काममें लगता था उसने उस समय का बहुत सारा बोझ बटा लिया और क्योंकि वह निर्लोभ और निष्काम होकर अपना काम करने लगा था इसलिये कुछ समय के बाद उन लोगों को जो राजा के उस काम से नाराज थे मालूम होगया कि पहिले की अपेक्षा इस राज्य में हर प्रकार की उन्नति होगई है और किसीको कोई दुःख न रहा है। कुछ समय के बाद जब राजा को यह विश्वास होगया कि नया मंत्री अपने राज्य का कारोबार संभालने के योग्य होगया है तो अपना सर्वस्व राज्य उसको सौंप आप बोझ से हलका होगया।

शेष फिर

म० रूपराम जी वनस्थी

नारद भक्ति सूत्र।

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः।

(१) अब भक्ति की व्याख्या करेंगे।

सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा॥

(२) भगवान् में उत्कृष्ट प्रेम को भक्ति कहते हैं।

अमृतस्वरूपा च ॥

(३) वह अमृतस्वरूप है।

यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति ॥

(४) जिसे पाकर पुरुष सिद्ध होता है अमृत होता है और तृप्त होता है।

यत्प्राप्य न किञ्चिद्वाञ्छति नशोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साही भवति ॥

(५) जिसे पाकर फिर और कुछ नहीं चाहता न शोक करता है, न द्वेष करता है, न रमण करता है और न उत्साही होता है।

यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति ॥

(६) जिसे जान कर उन्मत्त होता है, जड़वत् होता है और आत्माराम होता है।

सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात् ॥

(७) वह कामना सहित न होनी चाहिए, क्योंकि निरोध रूप है।

निरोधस्तु लोकवेदव्यापारन्यासः

(८) लौकिक और वैदिक कर्मकलाप के छोड़ने का नाम निरोध है।

तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता ॥

(९) परमात्मा में अनन्यता और उसकी प्राप्ति के विरोधियों में उदासीनता रखनी चाहिए।

अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता ॥

(१०) दूसरे आश्रयों के त्यागने का नाम अनन्यता है।

लोकवेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ॥

(११) लोक और वेद में जो कुछ भगवान् के प्रसन्न करने के लिए हो, उसका आचरण करना चाहिए और भगवन्मार्ग के विरोधियों से उदासीन रहना चाहिए।

भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणम्।

(१२) दृढ़ निश्चय के बाद (भी) शास्त्र की रक्षा होनी चाहिए।

अन्यथा पातित्याशङ्क्या ॥

(१३) शास्त्र की रक्षा न होने से पातित्य की शंका होती है।

लोकोऽपि तावदेव भोजनादिव्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि।

(१४) जब तक शरीर है, तब तक लोक व्यवहार भोजन आदि भी उसी मात्रा से

करना चाहिए।

तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ॥

(१५) विविध मतों से उस भक्ति के लक्षण कहते हैं।

पूजादिषु अनुराग इतिपाराशर्यः।

(१६) भगवान् की पूजा आदि में प्रेम ही भक्ति है, यह व्यास का मत है।

कथादिष्विति गर्गः ॥

(१७) गर्ग का कहना है कि भगवान् की कथा में प्रेम करना भक्ति है।

आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः।

(१८) शाण्डिल्य का सिद्धान्त है कि आत्मरति के अविरोध से भगवान् की कथा में प्रेम होना ही भक्ति है।

नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ॥

(१९) परन्तु (भगवान्) नारद का सिद्धान्त है भगवान् में सब कर्मों को समर्पित कर देना और उनकी विस्मृति में अत्यन्त व्याकुलता का होना ही भक्ति है।

अस्त्येवमेवम् ॥

(२०) यही ठीक है, यही ठीक है।

यथा व्रजगोपिकानाम् ॥

(२१) जैसे कि व्रज की गोपियों को थी।

तत्रापि न माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ॥

(२२) उस में भी माहात्म्य ज्ञान के भूलने का अपवाद है।

तद्विहीनं जाराणामिव ॥

(२३) उस के बिना जारों के समान प्रेम होता है।

नास्त्येव तस्मिंस्तत्सुखसुखित्वम् ॥

(२४) उस में उस के सुख से सुखी होना है ही नहीं।

सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा।

(२५) सो, यह भक्ति कर्म, ज्ञान और योग से भी उत्कृष्ट है।

फलरूपत्वात् ॥

(२६) क्योंकि, भक्ति कर्म, ज्ञान और योग का फल है।

ईश्वरस्याप्यभिमानिद्वेषित्वाद्दैन्यप्रियत्वाच्च ॥

(२७) क्योंकि ईश्वर भी अभिमानी द्वेषी और दीननाप्रिय है।

तस्य ज्ञानमेव साधनमित्येके ॥

(२८) उस भक्ति का साधन ज्ञान है, यह किन्हीं का मत है।

अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ॥

(२९) ज्ञान और भक्ति अन्योन्याश्रित हैं–भक्ति से ज्ञान और ज्ञान से भक्ति, यह दूसरों का कहना है।

स्वयं फलरूपेति ब्रह्मकुमारः ॥

(३०) ब्रह्मकुमार (नारद) का सिद्धान्त है कि वह (भक्ति) स्वयं फल स्वरूप है ।

राजगृहभोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात् ।

(३१) राजभवन में भोजन आदि के विषय में वैसा देखने से ।

न तेन राजपरितोषः क्षुच्छान्तिर्वा ॥

(३२) उस से राजा प्रसन्न नहीं हो जाता और न भूख ही मिटती है ।

तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः ॥

(३३) इसलिए मुमुक्षुओं को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए ।

तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः ॥

(३४) आचार्य्य जन उसके साधन बतलाते हैं ।

तत्तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागाच्च ॥

(३५) भक्ति के साधन विषयों तथा संग के त्याग से सुलभ होते हैं ।

अव्यावृत्तभजनात् ॥

(३६) अविच्छिन्न भजन से उस की प्राप्ति होती है ।

लोकेऽपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात् ।

(३७) लोक में भी भगवान् के गुणों के श्रवण और कीर्तन से भक्ति की प्राप्ति होती है ।

मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा ॥

(३८) वस्तुतः महात्माओं की कृपा से या भगवान् की ही कृपाकटाक्ष से उस की प्राप्ति होती है ।

महत्सङ्गस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च ॥

(३९) महात्माओं का संग दुर्लभ अगम्य और अव्यर्थ होता है ।

लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव ॥

(४०) सो, सत्संग भगवान् की ही कृपा से मिलता है ।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात् ॥

(४१) भगवान् में और भगवान् के भक्तों में कोई भेद नहीं है ।

तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम् ॥

(४२) वह सत्संग ही करो, सत्संग ही करो ।

दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः ॥

(४३) दुःसंग सब तरह से छोड़ देना चाहिए ।

कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाशसर्वनाशकारणत्वात् ॥

(४४) क्योंकि दुःसंग काम, क्रोध मोह, स्मृतिनाश, बुद्धिनाश और सर्वनाश का कारण है ।

तरंगायिता अपीमे संगात् समुद्रायन्ति ॥

(४५) ये काम आदि दुर्गुण तरंग के समान हों तो दुःसंग से समुद्र के समान हो जाते हैं ।

कस्तरति कस्तरति मायां ? यः

संगं त्यजति यो महानुभावं सेवते निर्ममो भवति ।

(४६) माया को कौन तरता है? जो संग छोड़ता है, महात्माओं की सेवा करता है और ममता से रहित होता है ।

यो विविक्तस्थानं सेवते यो लोकबन्धनमुन्मूलयति निस्त्रैगुण्यो भवति योगक्षेमं त्यजति ॥

(४७) जो एकान्त स्थान का सेवन करता है, लोक-बन्धनों को तोड़ देता है, त्रिगुणातीत हो जाता है और योग तथा क्षेम छोड़ देता है ।

यःकर्मफलंत्यजति कर्माणि संन्यस्यति ततो निर्द्वन्द्वो भवति ॥

(४८) जो कर्म्मों के फलों को छोड़ देता है कर्म्म छोड़ देता है और फिर निर्द्वन्द्व हो जाता है ।

यो वेदानपि संन्यस्यति केवलमविच्छिन्नानुरागं लभते ।

(४९) जो वेदों को भी छोड़ देता है । केवल अविच्छिन्न प्रेम को प्राप्त होता है ।

स तरति स तरति लोकांस्तारयति ॥

(५०) वह (माया) को तरता है और दूसरों को तारता है ।

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूम् ॥

(५१) प्रेम का स्वरूप कहने में नहीं आता ।

मूकास्वादनवत् ॥

(५२) वह गूंगे के स्वाद के समान है ।

प्रकाश्यते क्वापि पात्रे ॥

(५३) किसी पात्र में प्रकाशित होता है ।

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपम् ॥

(५४) यह प्रेम गुणों से रहित, कामना रहित, क्षण क्षण में बढ़ता हुआ, विच्छेद रहित, अत्यन्त सूक्ष्म और अनुभव स्वरूप है ।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव चिन्तयति ॥

(५५) उसे पाकर फिर उसे ही देखता, उसे ही सुनता है और उसी का चिन्तवन करता है ।

गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादिभेदाद्वा ।

(५६) गौणी भक्ति तीन प्रकार की है—सात्विकी, राजसी और तामसी, अथवा आर्त, जिज्ञासु और अर्थी भेद से ।

उत्तरस्मादुत्तरस्मात् पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति ॥

(५७) क्रमशः पहली श्रेय के लिए है, अर्थात् तामसी से राजसी और राजसी से सात्विकी श्रेष्ठ है ।

अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ॥

(५८) और साधनों से भक्ति में सुलभता है ।

प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् ॥

(५९) कारणकि इस में अन्य प्रमाणों की आवश्यकता नहीं, स्वयं प्रमाण स्वरूप है।

शान्तिरूपात् परमानन्दरूपाच्च ॥

(६०) और दूसरे यह शान्ति तथा परम आनन्द का स्वरूप है।

लोकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोकवेदत्वात् ॥

(६१) लोक हानि में चिन्ता न करनी चाहिए, क्योंकि लोक और वेद तो निवेदित हो चुका है।

तस्सिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फलत्यागस्तत्साधनञ्च कार्यमेव ॥

(६२) उसकी प्राप्ति हो जाने पर भी लोक व्यवहार न छोड़ना चाहिए, किन्तु फलों का त्याग करना चाहिए। साधन तो कर्तव्य ही है।

स्त्रीधननास्तिकचरित्रं न श्रवणीयम्

(६३) स्त्रियों के चरित्र, धन दौलत की बातें और नास्तिक चर्चा न सुननी चाहिए।

अभिमानदम्भादिकं त्याज्यम् ॥

(६४) अभिमान और पाखण्ड आदि छोड़ देने चाहियें।

तदर्पिताखिलाचारस्सन् कामक्रोधाभिमानादिकं तस्मिन्नेव करणीयम् ॥

(६५) भगवान् में सब कर्मों को अर्पण करके काम, क्रोध और अभिमान आदि उसी में करने चाहियें।

त्रिरूपभंगपूर्वकं नित्यदास्यनित्यकान्ताभजनात्मकं प्रेम कार्यं प्रेमैव कार्यम् ॥

(६६) प्रेम-कर्ता, प्रेमी और प्रेम, इस त्रिरूपता को मिटा कर नित्य दास्य और नित्य कान्ता-भजनात्मक प्रेम करना चाहिए।

भक्ता एकान्तिनो मुख्याः ॥

(६७) एकान्ती भक्त मुख्य हैं।

कण्ठावरोधरोमाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीञ्च

(६८) गद्गद कण्ठ, पुलकित और अश्रुओं से परस्पर कहते सुनते कुलों और पृथ्वी को पवित्र करते हैं।

तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्रीकुर्वन्ति शास्त्राणि ॥

(६९) वे तीर्थों को तीर्थ बनाते हैं, कर्मों को सुकर्म और शास्त्रों को सुशास्त्र करते हैं।

तन्मयाः ॥

(७०) वे भगवन्मय होते हैं।

मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा चेयं भूर्भवति ॥

(७१) (जहां ऐसे भक्त होते हैं, वहां) पितर प्रसन्न होते हैं, देवता नाचते हैं और यह पृथ्वी सनाथ हो जाती है।

नास्ति तेषु जातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः ॥

(७२) उन में जाति, विद्या, रूप कुल, धन और क्रिया आदि का कुछ भेद नहीं होता।

यतस्तदीयाः ॥

(७३) क्योंकि वे तो भगवान् के हो जाते हैं।

वादो नावलम्ब्यः ॥

(७४) वाद-विवाद न करना चाहिए।

बाहुल्यावकाशत्वादनियतत्वाच्च ॥

(७५) क्योंकि इस में बहुत समय व्यर्थ जाता है और यह अनित्य (तुच्छ) है।

भक्तिशास्त्राणि मननीयानि तदुद्बोधकर्माणि करणीयानि ॥

(७६) भक्ति-शास्त्रों का मनन करना चाहिए और उसकी जानकारी के कर्म्म करने चाहियें।

सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्धमपि व्यर्थं न नेतव्यम् ॥

(७७) जब सुख, दुःख, इच्छा, लाभ आदि छूट जायंगे, उस काल की प्रतीक्षा करता हुआ आधा क्षण भी व्यर्थ न खोवे।

अहिंसासत्यशौचदयास्तिक्यादिचारित्राणि परिपालनीयानि ॥

(७८) अहिंसा सत्य, शुचिता, दया, आस्तिक्य आदि सदाचारों का सेवन करना चाहिए।

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तैर्भगवानेव भजनीयः ॥

(७९) सदा सब भावों से निश्चिन्त होकर भगवत् का भजन ही करना उचित है।

स कीर्त्यमानः शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति भक्तान् ॥

(८०) कीर्तन करने पर भगवान् शीघ्र ही प्रकट होते हैं, और भक्तों पर कृपा करते हैं।

त्रिसत्यस्य भक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ॥

(८१) तीनों कालों में सत्य (त्रिकालाबाध्य) भगवान् की भक्ति ही सर्व-श्रेष्ठ है।

गुणमहात्म्यासक्ति,रूपासक्ति,पूजासक्ति, स्मरणसक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति,वात्सल्यासक्तिकान्तासक्ति,आत्मनिवेदनासक्ति,तन्मयासक्ति,परमविरहासक्तिरूपैकधाप्येकादशधा भवति ॥

(८२) यह भक्ति एक प्रकार की होकर भी ग्यारह प्रकार की है:-पूजासक्ति, स्मरणसक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति वात्सल्यासक्ति, कान्तासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति, और परम विरहासक्ति।

इत्येवं वदन्ति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमारव्यासशुकशाण्डिल्यगर्गविष्णुकौण्डिन्यशेषोद्धवारुणिबलिहनुमद्विभीषणादयोऽवयाचार्याः ॥

(८३) इस प्रकार जनता की बकवाद से निर्भय और एकमत सनकादिकुमार, व्यास, शुक, शाण्डिल्य गर्ग, विष्णु, कौण्डिन्य, शेष, उद्धव, आरुणि (अरुण के पुत्र निम्बार्क) बलि, हनुमान् और विभीषण आदि भक्ति के आचार्य कहते हैं।

य इदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति श्रद्दधाति स भक्तिमान्भवति स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं लभते इति ॥

(८४) जो पुरुष नारद प्रोक्त इस शिवानुशासन में विश्वास करता है श्रद्धा करता है, वह भक्तिमान् होता है और प्रियतम (भगवान्) को प्राप्त होता है।

भजन १

अपने ही रंग में रंग लेमुझे, रंगीले बाबा।टे.
इन्द्र प्रसन्न भया वसुधा पर जल थल पूर्ण करले। जो जल जुड़कर जात गंगामें वह गंगा जल ही करले ॥ १ ॥
जैसे बेल सहारा लेती जाय शिखर पर करले। जैसे ही नीर जो मिल कर दूध में वह सर्वस्व दूध ही करले ॥ २ ॥
जैसे भृङ्गी पकड़ कीट को अपने कान्धे धरले। शब्द सुनाय वर्ण को पल्टे अपने बराबर करले ॥ ३ ॥
दास जान कर कृपा कीजो ओरन चित्त न धरले। भवानीदास कहे साधो से अपने शरण करले ॥ ४ ॥

२

कहा करूं तस्वी और माला मन माला भया मेरा रे ॥ टेक ॥
ज्ञान डोर और मन का मणिया सुरत निरत से फेरा रे। आठ पहर सोवत और जागत लाग रहा जप तेरा रे ॥ १ ॥
मोदी में पुत्र नगर सब हेरा, दीवा तले अन्धेरा रे। मानत नाहीं अमाना जिबड़ा किया जतन बहुतेरा रे ॥ २ ॥
हिन्दू तो ग्यारस कर भूला, मुसल्मान कर रोजा रे। षट दर्शन तीर्थ कर भूला तन मन काहु न खोजोरे ॥ ३ ॥
देव देहरा सब ही देखा, दोगाहन बिचहेरा रे। कहत कबीर सुनो भाई साधो कर अपना सुल्झेरा रे ॥ ४ ॥

३

सन्तों तन खोजा मन पाया। मन ही श्रोता मन ही वक्ता मन ही निरञ्जन राया ॥ टेक॥
मन गुण तीन पाँचतत्त्व मन ही मन का सकल पसारा। जैसे चन्द्र उदक में दरशै, है माहि पर न्यारा ॥ सन्तो ॥ १ ॥
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया, ये सब मनकी भाँई। दश अवतार अंशधर लीला, मन बिन द्वितीया नाहीं ॥ २ ॥
शशिकर मण्डल रहे एक रस घट बहु किरण लखाया। जैसे कंचन के आभूषण बहु विधि नाम धराया ॥ ३ ॥
आदि था सो ही अब होगा, सतगुरु भेद लखाया। कहै कबीर कंचन के आभूषण एक भया जब नारा ॥ ४ ॥

४

मैं तन लग गई कोई जाने दूजा क्या जाने मेरा भाई ॥ टेक ॥
रस्ता में एक घायल घूमे, घाव नहीं रे भाई। सतगुरु बाण विरह का मारा साल रहा तन माहीं ॥ १ ॥
धना भक्त रैदास नामदेव लग गई मीरां बाई। बलख बुखारे के ऐसी लग गई, छोड़ गया बादशाही ॥ २ ॥
रंका लग गई बंका लग गई लग गई सेना नाई। पीपा नाद भड़ा के लग गई कूद पड़ा जल माही ३
दास कबीरा धन धीरा जिन ने लगन लगाई। जिन की चोट निशाने लग गई फते चाकरी पाई ॥ ४ ॥

५

राम नाम बिकती दलाले बन्धोरे मना ॥टेक॥
ध्रुव ने बान्धी, प्रह्लाद ने बान्धी, श्योरी सदना।
मीरां बाई बान्धी हर पाया है कन्हा ॥ १ ॥
पीपा तो रैदास ने बान्धी जाट रे धना।
दास तो कबीरा बान्धी ताना जो तना ॥ २ ॥
ज्ञान के भिखारी भये सुदामा ब्रह्मना।
मुट्ठी तण्डुल देके पाया है घना ॥ ३ ॥
अजामेल पापी तारे पतित घना।
सुरदास शरणे आये माफ हो गुना ॥ ४ ॥

६

दिन दास आज महाराज लाज गई मेरी,
दुःख हरो द्वारिकानाथ शरण मैं तेरी ॥टेक॥
दुःशासन वंश कुठार महा दुःखदाई,
कर पकरत मेरो चीर लाज नहीं आई।
अब भयो धर्म को नाश पाप रह्यो छाई,
लख्यो अधम सभा की ओर नारि बिलखाई।
शकुनि दुर्योधन करत छेड़ सब घेरि, दुःख ॥१॥
तुम दीनन की सुधि लेत देवकीनन्दन,
महिमा अनंत भगवंत भक्त-भय-भंजन।
तुम किया सिया दुःख दूर शम्भु धनु खंडन,
हे नारायण मदन गोपाल मुनिन मन रंजन।
करुणा निधान भगवान करी क्यों देरी, दुःख
बैठी जहाँ राजसमाज मौन सब खोई,
नहि कहत धर्मकी बात सभामें कोई।
पाँचों पति बैठे मौन कौन गति होई,
लै नंदनंदन को नाम द्रौपदी रोई।
करि करि विलाप संताप सभामें टेरी, दुःख ॥३॥
तुम पति प्रह्लाद रक्खो दुख टारो,
भये खंभ फारी नरसिंह असुर संहारो।
ब्रज खेलत केशी आदि बकासुर मारो,
मथुरा मुष्टिक चाणूर कंस मद गारो।
तुम मात पिताकी आनि कटाइ बेरी, दुःख० ॥४॥
सुन दीनबंधु भगवान भक्त हितकारी,
हरो भये चीर में प्रगट हरयो दुख भारी,
खैंचत हारयो दुःशासन वीर बलकारी,
राखि लई दीनकी लाज आप बनवारी।
बरसत हरषत सुर सुमन बजावत भेरी, दुःख०

निम्न लिखित महानुभावों ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राय साहब श्री बल्लभ प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलज़ारबाग़, पटना १०१)
२. राव बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मित्र ओनर अम्बाला १०१)
३. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरामण्डी लाहौर १०१)
४. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)
५. श्रीमान् राय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)
६. राव श्रीराम रईस नांगल २५)
७. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)
८. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)
९. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)
१०. बा० स्वयम्बरदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्ज़ पटना यू० पी०। २५)
११. श्रीमती रानी निहालकोर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्यूनिसिपल कमेटी पलवल। ११)
२. श्रीमती उमरावकोर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नांगल ११)
३. महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी। ५)
४. बा० ब्रजलाल जी सिरश्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)
५. राव बलदेवसिंह जी मु० जैनपुर तहसील रेवाड़ी। ५)
६. श्रीमती सूरज देवी धर्म पत्नी चौ० ज़ोरावरसिंह जी निशान मज अलीगढ़। ५)
७. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।